सितम्बर, 2019
I.S.S.N. : 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

Cover-ii

संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग, प्रभारी वि.सा.प्र.

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन, विधि
संकाय लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक : श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

परामर्शदाता : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महमूद अली खां और विनोद कुमार आर्य

ISSN 2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

वार्षिक : ₹ 1,300/-

© 2019 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

सितंबर, 2019 अंक - 9

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय
संपादक
अविनाश शुक्ला

विधि साहित्य
प्रकाशन

(2019) 2 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on
Website ⟹ https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

रविशंकर प्रसाद
RAVI SHANKAR PRASAD

सत्यमेव जयते

मंत्री
विधि एवं न्याय, संचार
एवं
इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना प्रौद्योगिकी
भारत सरकार
MINISTER OF
LAW & JUSTICE, COMMUNICATIONS
and
ELECTRONICS & INFORMATION TECHNOLOGY
GOVERNMENT OF INDIA

संदेश

हिंदी दिवस के गरिमामय अवसर पर आप सभी को हार्दिक शुभकामनाएं !

जैसा कि आप सभी जानते हैं कि प्रत्येक वर्ष 14 सितंबर का दिन हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है। हमारा देश विभिन्न भाषाओं एवं संस्कृतियों का देश है। देश के अधिसंख्यक लोगों द्वारा बोली जाने वाली एवं हमारी सामासिक संस्कृति की विभिन्नताओं के बीच एकता स्थापित करने वाली भाषा होने के कारण संविधान के लागू होने के साथ ही 26 जनवरी 1950 से संविधान के अनुच्छेद 343 (1) के अनुसार हिंदी को भारत संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकृति प्रदान की गई।

हिंदी की प्रकृति एवं संस्कृति विस्तारशील है तथा इसे विभिन्न भाषा - भाषी लोगों द्वारा बिना किसी विशेष प्रयास के सहज प्रयोग में लाया जा सकता है। भारत सरकार विधि, विज्ञान एवं तकनीक आदि सहित विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी के प्रयोग में उत्तरोत्तर वृद्धि करने की दिशा में निरंतर प्रयत्नशील रहती है ताकि राजभाषा हिंदी भारत के जन-जन की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम बन सके जिससे हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था और अधिक मजबूत बने एवं लोगों को भारत सरकार की नीतियों को समझने में कोई कठिनाई न हो।

मुझे प्रसन्नता है कि विधायी विभाग में इस वर्ष 14 सितंबर से 28 सितंबर के दौरान हिंदी पखवाड़े का आयोजन किया जा रहा है। इस दौरान विभाग के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को अपना अधिकाधिक कार्य मूल रूप से हिंदी में करने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु विभिन्न हिंदी प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाएगा। मुझे आशा है कि विभाग के अधिकारी एवं कर्मचारी इन प्रतियोगिताओं में बढ़-चढ़कर भाग लेंगे तथा अपना अधिक -से - अधिक सरकारी कामकाज मूल रूप से हिंदी में करने के लिए प्रेरित होंगे और विभाग के कार्यों में हिंदी के प्रगामी प्रयोग के लिए एक सहज वातावरण सृजित होगा।

जय हिंद !
नई दिल्ली
14 सितंबर, 2019.

(रवि शंकर प्रसाद)

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्च न्यायालयों द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो अधिवक्ताओं, विधि छात्रों, न्यायाधीशों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

जांच अभिकरणों को सामान्य अपराधों में भी नार्को परीक्षण कराने की छुट मिलनी चाहिए । इससे जहां एक तरफ जांच अभिकरणों को अपराधियों के विरुद्ध साक्ष्य एकत्रित करने में सहायता मिलेगी, वहीं दूसरी तरफ दोषसिद्धि का प्रतिशत भी बढ़ जाएगा । वर्तमान में, नार्को परीक्षण के लिए न्यायालय की अनुमति आवश्यक है और अनेक अवसरों पर न्यायालय नार्को परीक्षण की अनुमति देना आवश्यक नहीं समझते । हमारे देश में सामान्य अपराधों में 46 प्रतिशत आरोपियों को ही सजा मिल पाती है, इसी कारणवश न्याय का राज स्थापित करने में प्रशासन, पुलिस और न्यायालय स्वयं को अक्षम महसूस करते हैं । जापान में 99 प्रतिशत मामलों में, कनाडा में 97 प्रतिशत मामलों में और अमेरिका में 43 प्रतिशत मामलों में आरोपित दोषसिद्ध हो जाते हैं । चूंकि हमारे देश में आरोपितों के दोषसिद्ध होने की संभावनाएं अत्यन्त कम हैं, इसलिए वे दोबारा अपराधों में लिप्त हो जाते हैं । नार्को परीक्षण की उपयोगिता के संबंध में समझौता एक्सप्रेस विस्फोट वाले मामले का उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण होगा । इस मामले में, जब सिमी के मुखिया सफदर नागोरी का नार्को परीक्षण हुआ, तो पता चला कि इस घटना के पीछे पाकिस्तान के आतंकवादी संगठनों का हाथ था । इसलिए नार्को परीक्षण के लिए न्यायालयों की अनुमति की अपेक्षा में शिथिलता प्रदान की जानी चाहिए और यह परीक्षण कराया जाए अन्यथा नहीं, यह जांच अभिकरणों के विवेक पर छोड़ दिया जाना चाहिए ।

पत्रिका में समायोजित सामग्री और गुणवत्ता के संबंध में सभी पाठकों के विचार अपेक्षित हैं । अगली पत्रिका के संपादन के समय उनके विचारों पर ध्यान दिया जाएगा ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

सितंबर, 2019

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अजय कुमार और एक अन्य **बनाम** काशीपुर अर्बन को-आपरेटिव बैंक लिमिटेड और एक अन्य	313
अरविन्द कुमार **उर्फ** अरविन्द कुमार सोनी **बनाम** श्रीमती मधुलिका नंदकुलियार	345
उमेश **बनाम** भारत संघ और एक अन्य	338
एमार्स माइनिंग एंड कंस्ट्रक्सन प्राइवेट लिमिटेड **बनाम** मंजूनाथ हेब्बर	332
छितरु **बनाम** पाल और एक अन्य	400
नरुली देवी और अन्य **बनाम** जीत राम **उर्फ** जैत राम और अन्य	321
निशा सोनी (श्रीमती) **बनाम** मुकेश सोनी	292
प्रीतम सिंह (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और एक अन्य **बनाम** मित्तो देवी और एक अन्य	421
रुद्र बिलास किसान सहकारी चीनी मिल्स लिमिटेड और एक अन्य **बनाम** राज्य सूचना आयोग, उत्तर प्रदेश और अन्य	285
लाल चंद **बनाम** ट्रस्ट प्रभ दयाल शाह मोती राम शाह और एक अन्य	406
वर्धमान टैक्सटाइल्स लिमिटेड (मैसर्स) **बनाम** श्री गुरदयाल सिंह और अन्य	383
सरस्वती देवी (श्रीमती) और अन्य **बनाम** मिथिलेश कुमार सिंह और अन्य	352

पृष्ठ संख्या

सुजान भबानी प्रसाद चटर्जी **बनाम** राजेन्द्र कुमार सिंह और एक अन्य 361

हाजी अमीन सिरोहा **बनाम** डूंगरमल और एक अन्य 373

संसद् के अधिनियम

सती (निवारण) अधिनियम, 1987 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ 1 – 12

स्त्री अशिष्ट रूपण (प्रतिषेध) अधिनियम, 1986 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ 1 – 7

पृष्ठ संख्या

उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901

– धारा 44 – खतौनी और खसरा में प्रविष्टियां – उपधारणा – जहां खतौनी और खसरा में कोई प्रविष्टि की गई है और यदि उसे आक्षेपित नहीं किया गया है तब वहां यह उपधारित किया जाएगा कि ऐसी प्रविष्टियां सही हैं और उनका साक्ष्य के लिए अवलंब लिया जा सकता है ।

नरुली देवी और अन्य बनाम **जीत राम** उर्फ **जैत राम और अन्य** 321

पासपोर्ट अधिनियम, 1967 (1967 का 15)

– धारा 6(2)(च) और 8 – पासपोर्ट के नवीकरण हेतु आवेदन – पासपोर्ट धारक के विरुद्ध दांडिक मामले का लंबन – पूर्व में न्यायालय के आदेश पर एक वर्ष के लिए पासपोर्ट नवीकृत किया जाना – अवधि के विस्तार के लिए आवेदन – पासपोर्ट प्राधिकारी द्वारा न्यायालय से नए सिरे से अनुमति लिए जाने का निर्देश – विधिमान्यता – जहां पासपोर्ट धारक के पास न्यायालय के समक्ष कोई दांडिक मामला लंबित हो वहां न्यायालय द्वारा एक वर्ष के लिए नवीकरण का आदेश करने पर विस्तार के लिए पुन: अनुमति लिए जाने पर ही पासपोर्ट नवीकृत किया जा सकता है ।

उमेश बनाम **भारत संघ और एक अन्य** 338

प्रतिभूतिकरण और वित्तीय आस्तियों का पुनर्गठन और प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (2002 का 54)

– धारा 14(4) और 14 [सपठित उत्तर प्रदेश शहरी

पृष्ठ संख्या

भवन (किराया और बेदखली नियंत्रण) अधिनियम, 1972 की धारा 30] – प्रतिभूत आस्तियों के कब्जेदार/किरायेदारों से कब्जा लिया जाना – मकान मालिक और किरायेदार के संबंध विवादित होने के कारण किराया नियंत्रण अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही का लंबित होना – बैंक जिला मजिस्ट्रेट से 2002 के अधिनियम की धारा 14 के अधीन अनुज्ञा प्राप्त किए बिना किरायेदारी वाले परिसर का बलपूर्वक कब्जा नहीं ले सकता ।

अजय कुमार और एक अन्य बनाम **काशीपुर अर्बन को-आपरेटिव बैंक लिमिटेड और एक अन्य** 313

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39)

– धारा 2 और 3 – प्रोबेट कार्यवाहियां – वसीयतकर्ता के हक़ को साबित करने की आवश्यकता – प्रोबेट न्यायालय वसीयतकर्ता की हकदारी की जांच नहीं कर सकता – प्रोबेट न्यायालय केवल यह जांच कर सकता है कि विल सही रूप से निष्पादित की गई है या नहीं और क्या वसीयतकर्ता द्वारा विल स्वेच्छा से की गई है ।

सरस्वती देवी (श्रीमती) और अन्य बनाम **मिथिलेश कुमार सिंह और अन्य** 352

– धारा 276 – विल का प्रोबेट – विल साक्षियों द्वारा सम्यक्त: प्ररूपित और हस्ताक्षरित की जानी – प्रतिवादियों द्वारा विल के प्रोबेट का विरोध – अनुप्रमाणन साक्षियों की मृत्यु हो जाने के कारण विल को विल के लेखक द्वारा साबित किया जाना – वसीयतकर्ता के हस्ताक्षरों को अन्य विक्रय विलेख पर किए

पृष्ठ संख्या

गए हस्ताक्षरों से मेल खाना – वसीयतकर्ता द्वारा समझौता आवेदन में अपने अधिकार के प्रयोग से इनकार करना – मात्र समझौता आवेदन में अधिकार के प्रयोग से इनकार के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि वसीयतकर्ता ने संपत्ति में अपने अधिकार पूर्णतया त्यक्त कर दिए थे – परिस्थितियों को देखते हुए विल के लेखक के साक्ष्य के आधार पर विल का सम्यक् निष्पादन माना जा सकता है – अत: विल के प्रोबेट को मंजूर करना उचित है ।

सरस्वती देवी (श्रीमती) और अन्य बनाम **मिथिलेश कुमार सिंह और अन्य** 352

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 63 और 65 – संविदा के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद – वादी द्वारा करार की मूल प्रति उपलब्ध न होने के आधार पर फोटो-प्रति को साबित करने हेतु द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने के लिए आवेदन फाइल किया जाना – ग्राह्यता – द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने के लिए तभी अनुज्ञा दी जानी चाहिए जब मूल दस्तावेज नष्ट हो गया हो या खो गया हो – जहां वादी द्वारा द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने के लिए विलंब से आवेदन किया गया हो वहां दूसरे पक्षकार को हर्जाना दिलाया जाना न्यायसंगत होगा ।

वर्धमान टैक्सटाइल्स लिमिटेड (मैसर्स) बनाम **श्री गुरदयाल सिंह और अन्य** 383

रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16)

– धारा 49 – अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज – वर्जन – जहां किसी दस्तावेज का रजिस्ट्रीकरण कराना अनिवार्य

पृष्ठ संख्या

हो और ऐसे दस्तावेज को रजिस्ट्रीकृत न कराया गया हो वहां ऐसे दस्तावेज के आधार पर किसी अंतरण को विधिमान्य अंतरण नहीं माना जा सकता ।

नरुली देवी और अन्य बनाम **जीत राम** उर्फ **जैत राम और अन्य** 321

– धारा 60 और 62 – प्रमाणपत्र का रजिस्ट्रीकरण – उप-रजिस्ट्रार द्वारा दस्तावेज पर पृष्ठांकन से दस्तावेज के सम्यक् रूप से निष्पादन की उपधारणा किया जाना – रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा फ्लैट का विक्रय – विक्रेता को संपूर्ण विक्रय प्रतिफल के संदाय के पश्चात् फ्लैट, जो बैंक को बंधक था और स्वत्व संबंधी दस्तावेज बैंक की अभिरक्षा में हैं, का विक्रय विलेख रजिस्ट्रीकृत कराया जाना – बैंक द्वारा फ्लैट के स्वत्व के दस्तावेजों को क्रेता को हस्तगत न किया जाना अनुचित है और क्रेता स्वत्व अभिलेखों को प्राप्त करने का हकदार है ।

सुजान भबानी प्रसाद चटर्जी बनाम **राजेन्द्र कुमार सिंह और एक अन्य** 361

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47)

– धारा 38 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 26, नियम 9] – स्थायी व्यादेश के लिए वाद – वादी द्वारा विवादित भूमि पर प्रतिवादियों के विरुद्ध वृक्ष काटने से रोकने के लिए व्यादेश जारी करने के लिए अनुरोध – प्रतिवादियों द्वारा वृक्ष उनकी भूमि पर खड़े होने का कथन किया जाना – पक्षकारों के बीच भूमि के

पृष्ठ संख्या

सीमांकन से संबंधित विवाद – सीमांकन उच्च न्यायालय नियमों और आदेशों के अनुसरण में किया जाना – सीमांकन रिपोर्ट के विरुद्ध किसी भी पक्षकार द्वारा आक्षेप फाइल न किया जाना – चूंकि निचले न्यायालय द्वारा वादी का वाद खारिज किए जाने में कोई अनियमितता नहीं है इसलिए प्रतिवादियों की अपील मंजूर करके वादी का वाद खारिज किया जाना चाहिए ।

प्रीतम सिंह (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और एक अन्य बनाम **मित्तो देवी और एक अन्य** 421

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 12 और 226 [सपठित प्रतिभूतिकरण और वित्तीय आस्तियों का पुनर्गठन और प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम की धारा 13(4)] – को-आपरेटिव बैंक का राज्य की परिभाषा में सम्मिलित होने का प्रश्न अंतर्वलित होना – को-आपरेटिव बैंक अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत न तो राज्य है और न ही प्राधिकारी – बैंक की कार्रवाई के विरुद्ध रिट याचिका पोषणीय नहीं होगी ।

अजय कुमार और एक अन्य बनाम **काशीपुर अर्बन को-आपरेटिव बैंक लिमिटेड और एक अन्य** 313

– अनुच्छेद 227 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 6, नियम 17 और आदेश 7, नियम 14(3)] – पोषणीयता – सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6, नियम 17 और आदेश 7, नियम 14(3) के अधीन दो पूर्णतया भिन्न आवेदनों पर पारित आदेशों को चुनौती देते हुए याचिका फाइल किया जाना – प्रत्येक आदेश पृथक्वाद कारण गठित करता है, अत: दोनों आदेशों

पृष्ठ संख्या

के विरुद्ध एकल रिट याचिका पोषणीय नहीं होगी ।

हाजी अमीन सिरोहा बनाम **डूंगरमल और एक अन्य** 373

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 73 – घोषणा और कब्जे के लिए वाद – विलंबित प्रक्रम अर्थात् बहस के प्रक्रम पर छह स्थगन लिए जाने के पश्चात् अंगुष्ठ छाप के मिलान के लिए आवेदन – सात वर्ष की अवधि तक उक्त आवेदन फाइल न करने के लिए कोई कारण उपदर्शित न किया जाना – उक्त उपबंध का प्रयोग मुकदमे में विलंब करने और मामले को लंबा खींचने के लिए एक उपकरण के रूप में अनुज्ञात नहीं किया जा सकता – अत: ऐसा आवेदन ठीक ही खारिज किया गया है ।

छितरु बनाम **पाल और एक अन्य** 400

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 6, नियम 17 – अभिवचनों का संशोधन – विवाद्यक विरचित किए जाने के अनेक माह पश्चात् वादपत्र के संशोधन की ईप्सा उन तथ्यों को वादपत्र में सम्मिलित किए जाने के प्रयोजनार्थ की गई, जो वाद फाइल किए जाने के समय वादी के संज्ञान में थे – संशोधन प्रार्थनापत्र पोषणीय नहीं होगा और विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा न्यायत: खारिज किया गया ।

हाजी अमीन सिरोहा बनाम **डूंगरमल और एक अन्य** 373

– आदेश 7, नियम 14(3) – दस्तावेजों का प्रस्तुतीकरण – न्यायालय की अनुज्ञा – यह उपबंध प्रक्रिया के इस नियम का अपवाद है कि वादी वादपत्र के

पृष्ठ संख्या

साथ आरंभिक प्रक्रम पर ही अपने पक्षकथन के समर्थन में दस्तावेज फाइल करता है – इस उपबंध के अधीन अनुध्यात अपवाद का अवलंब केवल विचारण न्यायालय की अनुज्ञा पर ही लिया जा सकता है ।

हाजी अमीन सिरोहा बनाम **डूंगरमल और एक अन्य** 373

– आदेश 7, नियम 3 – हक़दारी की घोषणा के लिए वाद – अरजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा जंगम संपत्ति का अंतरण – अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज ऐसे व्यक्ति के जिसके हक़ में दस्तावेज किया गया है, कोई अधिकार या शक्ति निहित नहीं करता – जहां दावेदार संपत्ति की पहचान को साबित नहीं कर पाता वहां सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 3 का अननुपालन माना जाएगा – अत: ऐसे किसी मामले में वादी के हक़ में हक़दारी और कब्जे की घोषणा के लिए डिक्री पारित नहीं की जा सकती ।

नरुली देवी और अन्य बनाम **जीत राम** उर्फ **जैत राम और अन्य** 321

– आदेश 7, नियम 2 और आदेश 9, नियम 6 – धन की वसूली के लिए वाद – प्रतिवादी द्वारा वाद में प्रतिरक्षा न किया जाना और लिखित कथन फाइल न किया जाना – वादी द्वारा वाद साबित किया जाना – वादी दावाधीन रकम की वसूली के लिए एकपक्षीय डिक्री प्राप्त करने का हकदार है ।

एमार्स माइनिंग एंड कंस्ट्रक्सन प्राइवेट लिमिटेड बनाम **मंजूनाथ हेब्बर** 332

– आदेश 8, नियम 9 – वादपत्र के लिखित कथन के उत्तर में फाइल किए गए लिखित कथन का प्रत्युत्तर

पृष्ठ संख्या

फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया आवेदन – वादी द्वारा इस आधार पर प्रत्युत्तर फाइल किया जाना कि प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में अनेक नए तथ्यों का प्रकटीकरण किया है जिनका स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है – न्यायालय वाद के विचारण के लिए नई प्रक्रिया, जिसे संहिता के अंतर्गत विहित नहीं किया गया है, उपबंधित नहीं कर सकता – आवेदन अस्वीकृत किए जाने योग्य है ।

अरविन्द कुमार उर्फ **अरविन्द कुमार सोनी** बनाम **श्रीमती मधुलिका नंदकुलियार** 345

– आदेश 11(2) और 35 [सपठित भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 की धारा 47] – निष्पादन आवेदन – न्यास के हक़ में डिक्री – न्यास के सचिव द्वारा निष्पादन आवेदन पर हस्ताक्षर किया जाना – तीसरे पक्षकार द्वारा आक्षेप – विधिमान्यता – न्यास का सचिव न्यास के आवश्यक कार्यों के लिए न्यास द्वारा प्राधिकृत होने के आधार पर आंतरिक कार्य कर सकता है – अत: सचिव द्वारा निष्पादन आवेदन पर हस्ताक्षरों को अविधिमान्य नहीं कहा जा सकता ।

लाल चंद बनाम **ट्रस्ट प्रभ दयाल शाह मोती राम शाह और एक अन्य** 406

– आदेश 21, नियम 97, 99 और 100 – कब्जे की डिक्री के लिए निष्पादन आवेदन – तृतीय पक्षकार द्वारा परिसीमा के आधार पर आक्षेप – अपरिचित व्यक्ति या तृतीय पक्षकार द्वारा ऐसे आवेदन पर आक्षेप स्वीकार नहीं किया जा सकता – अत: ऐसा आक्षेप ग्रहण किए जाने योग्य नहीं होगा ।

लाल चंद बनाम **ट्रस्ट प्रभ दयाल शाह मोती राम शाह और एक अन्य** 406

पृष्ठ संख्या

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (2005 का 22)

– धारा 2(ज) और 6 – सहकारी चीनी मिल से सूचना देने का अनुरोध – चीनी मिल द्वारा यह कहते हुए सूचना देने से इनकार करना कि वह अधिनियम के उपबंधों के अधीन लोक प्राधिकारी नहीं है – राज्य सूचना आयुक्त द्वारा धारा 20 के अधीन शास्तिक कार्यवाही करने के लिए स्पष्टीकरण मांगा जाना – विधिमान्यता – चूंकि सहकारी सोसायटी जो राज्य सरकार द्वारा वित्त पोषित नहीं हैं, अधिनियम के उपबंधों के अधीन लोक प्राधिकारी की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आती – अत: ऐसी कोई सोसायटी सूचना देने के लिए कर्तव्याबद्ध नहीं है ।

रुद्र बिलास किसान सहकारी चीनी मिल्स लिमिटेड और एक अन्य बनाम **राज्य सूचना आयोग, उत्तर प्रदेश और अन्य** 285

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 13(1)(i-क) वादी द्वारा अभित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद का अनुरोध – न्यायालय द्वारा 'क्रूरता' के आधार पर डिक्री – वादी द्वारा अर्जी में क्रूरता का आधार न लिया जाना – जहां अर्जी में या अभिवचनों में क्रूरता का आधार नहीं लिया गया है वहां न्यायालय को अभिवचनों के बाहर जाकर किसी आधार पर अर्जी मंजूर नहीं करनी चाहिए ।

निशा सोनी (श्रीमती) बनाम **मुकेश सोनी** 292

पृष्ठ संख्या

– धारा 13(1)(i-ख) – वादी द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी – प्रतिवादी द्वारा अभिवचनों से इनकार किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा विनिश्चय के लिए कोई विवाद्यक या बिन्दु विरचित न किया जाना – जहां कानून में कोई प्रक्रिया अधिकथित की गई है वहां ऐसी प्रक्रिया का अनुपालन करना आवश्यक है – प्रक्रिया का अनुपालन न करना विचारण को अवैध बनाने वाला होगा ।

निशा सोनी (श्रीमती) बनाम **मुकेश सोनी** 292

– धारा 13(1)(i-ख) – विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी - अभित्यजन का आधार – दो वर्ष की अवधि की शर्त – जहां वादी द्वारा अभित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद की मांग की गई हो वहां न्यायालय को यह देखना चाहिए कि क्या अर्जी फाइल करने से अव्यवहित पूर्व दो वर्ष की अवधि पूरी हो गई थी ।

निशा सोनी (श्रीमती) बनाम **मुकेश सोनी** 292

(2019) 2 सि. नि. प. 285 इलाहाबाद

रुद्र बिलास किसान सहकारी चीनी मिल्स लिमिटेड और एक अन्य

बनाम

राज्य सूचना आयोग, उत्तर प्रदेश और अन्य

[2011 की रिट याचिका सं. 6611 (एम. बी.)]

तारीख़ 14 फरवरी, 2019

न्यायमूर्ति (डा.) देवेन्द्र कुमार अरोड़ा और न्यायमूर्ति नरेन्द्र कुमार जौहरी

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (2005 का 22) – धारा 2(ज) और 6 – सहकारी चीनी मिल से सूचना देने का अनुरोध – चीनी मिल द्वारा यह कहते हुए सूचना देने से इनकार करना कि वह अधिनियम के उपबंधों के अधीन लोक प्राधिकारी नहीं है – राज्य सूचना आयुक्त द्वारा धारा 20 के अधीन शास्तिक कार्यवाही करने के लिए स्पष्टीकरण मांगा जाना – विधिमान्यता – चूंकि सहकारी सोसायटी जो राज्य सरकार द्वारा वित्त पोषित नहीं हैं, अधिनियम के उपबंधों के अधीन लोक प्राधिकारी की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आती – अत: ऐसी कोई सोसायटी सूचना देने के लिए कर्तव्याबद्ध नहीं है ।

मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने रुद्र बिलास किसान सहकारी चीनी मिल्स लिमिटेड (हमारे समक्ष का याची सं. 1) से संबंधित कतिपय सूचना के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 6 के अधीन तारीख़ 2 फरवरी, 2009 को एक आवेदन फाइल किया था । याची ने उपर्युक्त पत्र प्राप्त होने पर तारीख़ 22 जुलाई, 2009 के पत्र द्वारा प्रत्यर्थी सं. 3 को यह सूचना दी कि उसके द्वारा मांगी गई सूचना उच्च न्यायालय द्वारा 2008 की रिट याचिका सं. 45384 में तारीख़ 3 सितंबर, 2008 को पारित आदेश को दृष्टिगत करते हुए उपलब्ध नहीं कराई जा सकती । इसके पश्चात्

प्रत्यर्थी सं. 3 ने यह अभिकथित करते हुए राज्य सूचना आयुक्त, लखनऊ (प्रत्यर्थी सं. 1) के समक्ष एक शिकायत फाइल की कि उसके द्वारा मांगी गई सूचना उपलब्ध नहीं कराई गई । याची सं. 2 ने यह प्रारंभिक आक्षेप करते हुए अपना उत्तर प्रस्तुत किया कि चूंकि याची सं. 1 सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 2(ज) के अधीन एक लोक प्राधिकारी नहीं है इसलिए वह सूचना प्रदत्त करने के लिए विधित: आबद्ध नहीं है । याचियों ने, राज्य सूचना आयुक्त, लखनऊ द्वारा शिकायत मामला सं. एस-3-1088 सी./2009 (विद्या राम बनाम महा प्रबंधक, रुद्र बिलास किसान सहकारी चीनी मिल्स लिमिटेड, राम पुर) वाले मामले में तारीख़ 6 जून, 2011 को पारित उस आदेश की वैधता और विधिमान्यता को प्रश्नगत करते हुए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय में समावेदन किया है जिसके द्वारा याची सं. 2 को जो रुद्र बिलास किसान सहकारी चीनी मिल्स लिमिटेड, बीला पुर जिला राम पुर का महा प्रबंधक है, प्रत्यर्थी सं. 3 (विद्या राम) को 20 दिन के भीतर सूचना प्रदत्त करने और यह स्पष्ट करने का निदेश दिया है कि उसके विरुद्ध प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा मांगी गई सूचना उपलब्ध न कराने के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 20 के अधीन शास्तिक कार्यवाहियां क्यों न आरंभ की जाएं । राज्य सूचना आयुक्त के आदेश से व्यथित होकर याचियों ने वर्तमान रिट याचिका फाइल की ।

अभिनिर्धारित – रिट याचिका में किए गए प्रकथनों के खंडन के लिए प्रत्यर्थियों में से किसी के द्वारा कोई प्रति-शपथपत्र फाइल नहीं किया गया है । तथापि, प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से रिट याचिका में आक्षेपित आदेश का समर्थन करते हुए यह प्रकथन किया गया है कि चूंकि याची सं. 1 एक सोसायटी है और इसलिए यह राज्य का एक उपकरण होने के नाते संविधान के अनुच्छेद 12 की परिधि के अन्तर्गत आती है । ऐसे नागरिकों को जो सूचना प्राप्त करना चाहते हैं, सूचना प्राप्त करने से संबंधित नियम सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के बिधान के अधीन केन्द्र सरकार द्वारा अधिनियमित किए गए हैं । सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 6 के अधीन सूचना अभिप्राप्त करने के लिए किसी लोक प्राधिकारी से अनुरोध किया जा सकता है और

ऐसे प्राधिकारी को उक्त अधिनियम की धारा 2(ज) के अधीन परिभाषित किया गया है । वर्तमान मामले में यह विवादित नहीं है कि प्रत्यर्थी सं. 1 की शिकायत पर जिसके द्वारा कतिपय सूचनाएं मांगी गई थीं, याचियों ने सूचना आयुक्त के समक्ष इस आशय का प्रारंभिक आक्षेप उठाया था कि याची सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की परिधि के अन्तर्गत नहीं आते क्योंकि याची सं. 1 लोक प्राधिकारी की परिभाषा के अर्थान्तर्गत एक लोक प्राधिकारी नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं. 2 ने याचियों द्वारा उठाए गए आक्षेप का निपटान किए बिना आक्षेपित आदेश पारित कर दिया जो अपने आप में विधि के अनुसार नहीं है । राज्य आयुक्त का यह सभार कर्तव्य था कि वह ऊपर निर्दिष्ट अधिनियम के उपबंधों और विधि की सुस्थापित स्थिति को दृष्टिगत करते हुए आक्षेप पर विचार करता । यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने जिसने सूचना मांगी थी, एक पत्र भेजा है, जो अभिलेख पर है और उसमें यह उल्लेख है कि वह अब यह उक्त सूचना अभिप्राप्त करने में हितबद्ध नहीं है । उपर्युक्त विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए रिट याचिका मंजूर की जाती है और प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा तारीख़ 6 जून, 2011 को पारित आक्षेपित आदेश एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है । पक्षकार अपना-अपना खर्चा स्वयं वहन करेंगे । (पैरा 7, 8, 11 और 12)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[2013]	2013 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5683 : **थलप्पलम एस. को-आपरेटिव बैंक लिमिटेड और अन्य** बनाम **केरल राज्य और अन्य** ;	10
[2003]	ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 4531 : **महा प्रबंधक किसान सहकारी चीनी मिल्स लिमिटेड, सुलतानपुर उत्तर प्रदेश** बनाम **शत्रुघन निषाद** ।	9

आरंभिक (रिट) अधिकारिता : 2011 की रिट याचिका सं. 6611 (एम. बी.).

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याचियों की ओर से श्री सुधांशु चौहान

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री शिखर आनन्द

रिट याचिका में निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) देवेन्द्र कुमार अरोड़ा और न्यायमूर्ति नरेन्द्र कुमार जौहरी द्वारा दिया गया ।

निर्णय – याचियों की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री सुधांशु चौहान और प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री शिखर आनन्द को सुना गया ।

2. तारीख़ 7 जुलाई, 2011 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थियों को सूचनाएं जारी की गईं । प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से श्री शिखर आनन्द द्वारा वकालतनामा फाइल किया गया जबकि प्रत्यर्थी सं. 3 ने यह कथन करते हुए तारीख़ 7 जनवरी, 2019 का पत्र भेजा है कि उसने सूचना का अधिकार अधिनियम के उपबंधों के अधीन एक आवेदन फाइल किया था तथापि, अब उसे उक्त सूचनाओं की आवश्यकता नहीं है ।

3. याचियों ने, राज्य सूचना आयुक्त, लखनऊ द्वारा शिकायत मामला सं. एस-3-1088 सी./2009 (विद्या राम बनाम महा प्रबंधक, रुद्र बिलास किसान सहकारी चीनी मिल्स लिमिटेड, राम पुर) वाले मामले में तारीख़ 6 जून, 2011 को पारित उस आदेश की वैधता और विधिमान्यता को प्रश्नगत करते हुए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय में समावेदन किया है जिसके द्वारा याची सं. 2 को जो रुद्र बिलास किसान सहकारी चीनी मिल्स लिमिटेड, बीला पुर जिला राम पुर का महा प्रबंधक है, प्रत्यर्थी सं. 3 (विद्या राम) को 20 दिन के भीतर सूचना प्रदत्त करने और यह स्पष्ट करने का निदेश दिया है कि उसके विरुद्ध प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा मांगी गई सूचना उपलब्ध न कराने के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 20 के अधीन शास्तिक कार्यवाहियां क्यों न आरंभ की जाएं ।

4. मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने रुद्र बिलास किसान सहकारी चीनी मिल्स लिमिटेड (हमारे समक्ष का याची सं. 1) से संबंधित कतिपय सूचना के लिए सूचना का अधिकार

अधिनियम की धारा 6 के अधीन तारीख़ 2 फरवरी, 2009 को एक आवेदन फाइल किया था । याची ने उपर्युक्त पत्र प्राप्त होने पर तारीख़ 22 जुलाई, 2009 के पत्र द्वारा प्रत्यर्थी सं. 3 को यह सूचना दी कि उसके द्वारा मांगी गई सूचना उच्च न्यायालय द्वारा 2008 की रिट याचिका सं. 45384 में तारीख़ 3 सितंबर, 2008 को पारित आदेश को दृष्टिगत करते हुए उपलब्ध नहीं कराई जा सकती । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 3 ने यह अभिकथित करते हुए राज्य सूचना आयुक्त, लखनऊ (प्रत्यर्थी सं. 1) के समक्ष एक शिकायत फाइल की कि उसके द्वारा मांगी गई सूचना उपलब्ध नहीं कराई गई । याची सं. 2 ने यह प्रारंभिक आक्षेप करते हुए अपना उत्तर प्रस्तुत किया कि चूंकि याची सं. 1 सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 2(ज) के अधीन एक लोक प्राधिकारी नहीं है इसलिए वह सूचना प्रदत्त करने के लिए विधित: आबद्ध नहीं है ।

5. यह प्रकथन किया गया है कि प्रत्यर्थी सं. 3 की शिकायत पर राज्य सूचना आयुक्त ने तारीख़ 6 जून, 2011 के आक्षेपित आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा मांगी गई सूचना 20 दिन के भीतर प्रदत्त कराने और अगली तारीख को यह स्पष्टीकरण देने के लिए निदेश किया कि प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा मांगी गई सूचना उपलब्ध न कराने के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 20 के अधीन क्यों न शास्तिक कार्यवाहियां आरंभ की जाएं । ऐसा याचियों द्वारा उठाए गए आक्षेपों पर विचार किए बिना किया गया था ।

6. याचियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि याची सं. 1 एक सहकारी सोसायटी है जो उत्तर प्रदेश सहकारी सोसायटीज़ अधिनियम, 1965 (यू. पी. को-आपरेटिव सोसायटीज़ ऐक्ट, 1965) के अधीन रजिस्ट्रीकृत है । उप-विधि के अनुसार उक्त सोसायटी न तो राज्य सरकार का परिकरण है या न ही उपकरण है या अभिकर्ता है, अपितु यह पूर्णतया प्राइवेट प्रकृति की है जिस पर सरकार का किसी प्रकार का कोई नियंत्रण नहीं है अथवा न ही सरकार वित्तीय सहायता प्रदान करती है ।

7. रिट याचिका में किए गए प्रकथनों के खंडन के लिए प्रत्यर्थियों में से किसी के द्वारा कोई प्रति-शपथपत्र फाइल नहीं किया गया है ।

तथापि, प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से रिट याचिका में आक्षेपित आदेश का समर्थन करते हुए यह प्रकथन किया गया है कि चूंकि याची सं. 1 एक सोसायटी है और इसलिए यह राज्य का एक उपकरण होने के नाते संविधान के अनुच्छेद 12 की परिधि के अन्तर्गत आती है ।

8. ऐसे नागरिकों को जो सूचना प्राप्त करना चाहते हैं, सूचना प्राप्त करने से संबंधित नियम सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के बिधान के अधीन केन्द्र सरकार द्वारा अधिनियमित किए गए हैं । सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 6 के अधीन सूचना अभिप्राप्त करने के लिए किसी लोक प्राधिकारी से अनुरोध किया जा सकता है और ऐसे प्राधिकारी को उक्त अधिनियम की धारा 2(ज) के अधीन परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है :-

"2(ज). लोक प्राधिकारी से -

(क) संविधान द्वारा या उसके अधीन ;

(ख) संसद द्वारा बनाई गई किसी अन्य विधि ;

(ग) राज्य विधान-मंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा ;

(घ) समुचित सरकार द्वारा जारी की गई अधिसूचना या किए गए आदेश द्वारा, स्थापित या गठित कोई प्राधिकारी या निकाय या स्वायत्त संस्था अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत -

(i) कोई ऐसा निकाय है जो समुचित सरकार के स्वामित्वाधीन, नियंत्रणाधीन या उसके द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध कराई गई निधियों द्वारा सारभूत रूप से वित्त पोषित है ;

(ii) कोई ऐसा गैर-सरकारी संगठन है जो समुचित सरकार द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध कराई गई निधियों द्वारा सारभूत रूप से वित्त पोषित है ।"

9. उच्चतम न्यायालय ने **महा प्रबंधक किसान सहकारी चीनी मिल्स लिमिटेड, सुलतानपुर उत्तर प्रदेश** बनाम **शत्रुघन निषाद**[1] वाले

---

[1] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 4531.

मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि सहकारी चीनी मिल न तो सरकार का परिकरण है और न ही अभिकर्ता और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह एक प्राधिकारी है और यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत एक राज्य नहीं है ।

10. **थलप्पलम एस. को-आपरेटिव बैंक लिमिटेड और अन्य** बनाम **केरल राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या केरल को-आपरेटिव सोसायटीज़ ऐक्ट के अधीन रजिस्ट्रीकृत कोई सहकारी सोसायटी सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 2(ज) के अधीन "लोक प्राधिकारी" की परिभाषा के अन्तर्गत आती है और क्या सूचना का अधिकार अधिनियम के अधीन किसी नागरिक द्वारा मांगी सूचना को प्रदान करने के लिए कर्तव्याबद्ध है । उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसी सोसायटियां लोक प्राधिकारी नहीं हैं और इसलिए किसी नागरिक द्वारा सूचना का अधिकार अधिनियम के अधीन मांगी गई सूचना प्रदान करने के लिए विधित: आबद्ध नहीं हैं । तथापि, राज्य सूचना आयुक्त इस बारे में परीक्षा कर सकता है और यह पता लगा सकता है कि क्या प्रश्नगत सोसायटी नियंत्रण की परीक्षा को पूरा करती है अथवा क्या राज्य सरकार द्वारा निधियां प्रदत्त की गई हैं ।

11. वर्तमान मामले में यह विवादित नहीं है कि प्रत्यर्थी सं. 1 की शिकायत पर जिसके द्वारा कतिपय सूचनाएं मांगी गई थीं, याचियों ने सूचना आयुक्त के समक्ष इस आशय का प्रारंभिक आक्षेप उठाया था कि याची सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की परिधि के अन्तर्गत नहीं आते क्योंकि याची सं. 1 लोक प्राधिकारी की परिभाषा के अर्थान्तर्गत एक लोक प्राधिकारी नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं. 2 ने याचियों द्वारा उठाए गए आक्षेप का निपटान किए बिना आक्षेपित आदेश पारित कर दिया जो अपने आप में विधि के अनुसार नहीं है । राज्य आयुक्त का यह सभार कर्तव्य था कि वह ऊपर निर्दिष्ट

---

[1] 2013 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5683.

अधिनियम के उपबंधों और विधि की सुस्थापित स्थिति को दृष्टिगत करते हुए आक्षेप पर विचार करता । यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने जिसने सूचना मांगी थी, एक पत्र भेजा है, जो अभिलेख पर है और उसमें यह उल्लेख है कि वह अब यह उक्त सूचना अभिप्राप्त करने में हितबद्ध नहीं है ।

12. उपर्युक्त विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए रिट याचिका मंजूर की जाती है और प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा तारीख़ 6 जून, 2011 को पारित आक्षेपित आदेश एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है । पक्षकार अपना-अपना खर्चा स्वयं वहन करेंगे ।

याचिका मंजूर की गई ।

मह.

(2019) 2 सि. नि. प. 292 **इलाहाबाद**

निशा सोनी (श्रीमती)

बनाम

मुकेश सोनी

(2015 की प्रथम अपील सं. 275)

तारीख़ 5 अप्रैल, 2019

न्यायमूर्ति शशिकांत गुप्ता और न्यायमूर्ति प्रदीप कुमार श्रीवास्तव

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1)(i-ख) – विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी - अभित्यजन का आधार – दो वर्ष की अवधि की शर्त – जहां वादी द्वारा अभित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद की मांग की गई हो वहां न्यायालय को यह देखना चाहिए कि क्या अर्जी फाइल करने से अव्यवहित पूर्व दो वर्ष की अवधि पूरी हो गई थी ।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 – धारा 13(1)(i-क) वादी द्वारा

अभित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद का अनुरोध – न्यायालय द्वारा 'क्रूरता' के आधार पर डिक्री – वादी द्वारा अर्जी में क्रूरता का आधार न लिया जाना – जहां अर्जी में या अभिवचनों में क्रूरता का आधार नहीं लिया गया है वहां न्यायालय को अभिवचनों के बाहर जाकर किसी आधार पर अर्जी मंजूर नहीं करनी चाहिए ।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 – धारा 13(1)(i-ख) – वादी द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी – प्रतिवादी द्वारा अभिवचनों से इनकार किया जाना – विचारण न्यायालय द्वारा विनिश्चय के लिए कोई विवाद्यक या बिन्दु विरचित न किया जाना – जहां कानून में कोई प्रक्रिया अधिकथित की गई है वहां ऐसी प्रक्रिया का अनुपालन करना आवश्यक है – प्रक्रिया का अनुपालन न करना विचारण को अवैध बनाने वाला होगा ।

आक्षेपित निर्णय और डिक्री को इस आधार पर आक्षेपित किया गया है कि चूंकि विद्वान् निचले न्यायालय ने अनुमानों और संकल्पनाओं के आधार पर निर्णय पारित किया है इसलिए यह निर्णय अनुचित है । विवाह-विच्छेद के आधार अभिवचनों के परे हैं और इसलिए विद्वान् निचले न्यायालय ने प्रतिवादी-अपीलार्थी के ऊपर सबूत का भार डालकर अवैधता कारित की है । वादी-प्रत्यर्थी द्वारा कोई क्रूरता साबित नहीं की गई है । विद्वान् निचले न्यायालय ने प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अधीन फाइल किए गए वाद के लंबन पर भी विचार नहीं किया है । चूंकि निर्णय विधि के प्रतिकूल है इसलिए आक्षेपित निर्णय और डिक्री अपास्त किए जाने योग्य है । यह अपील मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, झांसी द्वारा 2013 के वाद सं. 177 (मुकेश सोनी बनाम श्रीमती निशा सोनी) जो हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(क) के अधीन फाइल किया गया था, वाले मामले में तारीख 4 अप्रैल, 2015 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा वादी-प्रत्यर्थी की विवाह-विच्छेद की अर्जी पक्षकारों के बीच तारीख 18 जून, 2005 को संपन्न विवाह को विघटित करते हुए डिक्री की गई है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – उपबंध के अधीन यह अपेक्षित है कि अभित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी को पेश किए जाने की तारीख से यह आवश्यक है कि प्रतिवादी द्वारा अर्जी के पेश किए जाने के अव्यवहित पूर्व दो वर्ष से अन्यून की निरंतर अवधि के लिए वादी को त्यक्त कर दिया गया हो । अत: मामले का निचोड़ यह है कि यह अवधारित किया जाए कि वादी ने वह कौन-सी तारीख बताई है जिस पर प्रतिवादी द्वारा उसका अभित्यजन किया गया है । वादपत्र के पैरा 8 के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि वादी ने यह अभिकथित किया है कि फरवरी, 2011 में टैस्ट-ट्यूब उपचार कराया गया था और अप्रैल, 2011 में गर्भपात हो गया था और इसके पश्चात् वादी ने अपने खर्चे पर पूर्ण रूप से उपचार कराया और प्रतिवादी की हर प्रकार से देखभाल और सेवा की । इससे यह उपदर्शित होता है कि अप्रैल, 2011 के पश्चात् किसी तारीख को जिसके बारे में वादपत्र में विनिर्दिष्ट रूप से नहीं कहा गया है, वादी को परित्यक्त कर दिया गया था । स्वयं उसकी स्वीकृति के अनुसार टैस्ट-ट्यूब उपचार किया गया था जिसके द्वारा वह गर्भवती हुई थी और इसके पश्चात् अप्रैल, 2011 में गर्भपात हो गया था और तत्पश्चात् उसका उपचार कराया गया था और यह उपचार वादी द्वारा स्वयं अपने खर्चों पर कराया गया था । नैसर्गिक रूप से उस समय तक अभित्यजन का कोई अवसर नहीं था जब तक प्रतिवादी उपचाराधीन रही थी और गर्भपात के पश्चात् जब तक वादी ने उसकी सेवा की । निचले न्यायालय के अभिलेख पर उपलब्ध उपचार के कागज निर्मोचन टिकट से जो तारीख 11 अप्रैल, 2011 से तारीख 25 अप्रैल, 2011 तक का है, यह प्रकट होता है कि प्रतिवादी को कल्याण मेमोरियल हास्पीटल, ग्वालियर में भर्ती कराया गया था । स्वयं वादी ने यह अभिवचन करते हुए स्वीकार किया है कि गर्भपात के लिए उपचार के दौरान और उसके पश्चात् भी वादी ने अपनी पत्नी की देखभाल की थी और उपचार के खर्चे उठाए थे और उसके पश्चात् भी देखभाल और सेवा की थी जैसा कि वादी द्वारा स्वयं अभिकथित किया गया है कि उपचार के पूर्व देखभाल और सेवा सहित अभित्यजन, यदि कोई हो, मई, 2011 में आरंभ हुआ था । इस अवधि या तारीख के पूर्व इस अभिकथन का कि वह ग्वालियर

में रह रही थी और वह वादी के साथ नहीं रह रही थी, कोई महत्व नहीं रह जाता है क्योंकि वादी ने स्वयं अपने आचरण द्वारा उसको माफ़ कर दिया था । इससे यह भी उपदर्शित होता है कि इस बारे में न केवल युक्तियुक्त कारण मौजूद था अपितु पत्नी के लिए ग्वालियर में रहने के लिए उसकी सम्मति भी थी क्योंकि वह टैस्ट-ट्यूब बच्चे के लिए उपचाराधीन थी और उसका गर्भपात हुआ था । वादपत्र में जो कुछ कहा गया है, उस पर विश्वास करते हुए अप्रैल, 2011 के अंत में या उस मास के ठीक पश्चात् प्रतिवादी द्वारा उसका अभित्यजन कर दिया गया था । वादपत्र के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि वादी द्वारा वादपत्र तारीख 29 मार्च, 2013 को फाइल किया गया था । इसका यह अर्थ है कि अर्जी दो वर्ष पूर्ण होने से पहले ही फाइल की गई थी । किसी भी स्थिति में अभित्यजन की दो वर्ष की अवधि अप्रैल, 2013 के अंत में या मई, 2013 में पूरी होती है जबकि अर्जी मार्च, 2013 में फाइल की गई है । अत: 2 वर्ष के अभित्यजन की प्रथम अपेक्षा वादपत्र पेश किए जाने के समय पूरी नहीं हुई थी । विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा इस तथ्य की उपेक्षा की गई है । इसके प्रतिकूल संपूर्ण निर्णय के परिशीलन से उस तारीख के बारे में कोई निष्कर्ष निकालना कठिन है जिस पर प्रतिवादी द्वारा वादी का अभित्यजन किया गया अथवा हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन यथा अपेक्षित अभित्यजन के बारे में कोई निष्कर्ष निकालना भी कठिन है । आक्षेपित निर्णय से यह उपदर्शित होता है कि विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वादी ने प्रतिवादी को अपना ए. टी. एम. कार्ड दे दिया था और प्रतिवादी ने तारीख 5 जनवरी, 2011 से तारीख 27 मार्च, 2012 तक उसका उपयोग किया था । यह संभावना भी नहीं बनती है कि प्रतिवादी की ओर से दो वर्ष का अभित्यजन किया गया था । इसके पश्चात् भी आश्चर्यजनक रूप से विद्वान् निचले न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि वादी ने अपने शपथपत्र में यह कहा है कि प्रतिवादी दिसंबर, 2010 से अपने मायके में रह रही है और इसलिए उसका प्रतिवादी के साथ कोई शारीरिक संबंध नहीं हुआ था । (पैरा 12, 14 और 15)

विद्वान् निचले न्यायालय ने अभिवचनों के परे प्रतिवादी पर

आरोपित क्रूरता के बारे में विवेचना की है जबकि इस बारे में वादपत्र में ऐसा कोई आधार अभिकथित नहीं किया गया है और न ही इस आधार पर विवाह-विच्छेद अर्जी फाइल की गई थी । यह भी आश्चर्यजनक है कि विद्वान् निचले न्यायालय ने क्रूरता के आधार पर हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i-क) के अधीन विवाह-विच्छेद की अर्जी को डिक्री किया है । विद्वान् निचला न्यायालय क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद मंजूर करते समय अभिवचनों के बाहर गया है और इस बात की अनदेखी की है कि वादी-प्रत्यर्थी ने क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद न चाहते हुए अभित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए अनुरोध किया है । इस प्रक्रिया में निचले न्यायालय द्वारा सबूत का भार गलत रूप से प्रतिवादी पर डाला गया है जबकि विधि के अधीन यह साबित करने का भार वादी पर है कि वह अपने आधारों को साबित करे । वादी ने अपने कथन के समर्थन में स्वयं के सिवाय किसी अन्य साक्षी की परीक्षा नहीं कराई है । यदि बहस के लिए यह उपधारित कर लिया जाए कि वादपत्र में क्रूरता के अभिवचन का कोई तत्व या साक्ष्य है तो भी विद्वान् निचले न्यायालय को हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 में उत्तर प्रदेश संशोधन को ध्यान में रखना चाहिए था । आक्षेपित निर्णय के परिशीलन से न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि विद्वान् निचले न्यायालय ने इस आशय का कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया है कि अपीलार्थी की ओर से पति के साथ ऐसी कोई क्रूरता बरती गई थी जो अर्जीदार के मस्तिष्क में यह युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न करती हो कि अर्जीदार के लिए अपनी पत्नी के साथ रहना नुकसानदेह या क्षतिपूर्ण होगा । जहां केवल अभित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद का अनुरोध किया गया है वहां न्यायालय क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद मंजूर नहीं कर सकता । इसके अतिरिक्त अपीलार्थी की ओर से दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के अनुतोष की ईप्सा करते हुए हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अधीन अर्जी की एक प्रति भी फाइल की गई है तथापि, निचले न्यायालय द्वारा इसकी अनदेखी की गई है । (पैरा 16, 19 और 20)

विद्वान् निचले न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय पारित करते समय विधिक प्रक्रिया को लागू नहीं किया है । इस बारे में न तो कोई विवाद्यक विरचित किया गया है और न ही अवधारण के लिए कोई मुद्दा बनाया गया है । कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 10 यह उपबंध करती है कि कुटुंब न्यायालय के समक्ष के सभी वादों और कार्यवाहियों को सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध लागू होंगे । हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 21 भी यह उपबंध करती है कि अधिनियम के अधीन कार्यवाहियां सिविल प्रक्रिया संहिता द्वारा विनियमित होंगी । इसके अतिरिक्त कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 17 यह उपबंध करती है कि किसी कुटुंब न्यायालय के निर्णय में मामले के संक्षिप्त कथन, अवधारण के लिए मुद्दा और उस पर विनिश्चय तथा ऐसे विनिश्चय के लिए कारणों का उल्लेख होगा । सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 14 पक्षकारों द्वारा अभिवचन पेश किए जाने के पश्चात् विवाद्यक विरचित किए जाने के बारे में उपबंध करता है जिससे कि उनके बीच विवाद का सही निर्धारण हो सके और उन मुद्दों पर पक्षकार अपना-अपना साक्ष्य पेश करने में समर्थ हो सकें । न्यायालय को सम्पूर्ण आदेश-पत्रक और निर्णय के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन फाइल करने की तारीख पर विवाद्यक विरचित किए बिना साक्ष्य के लिए मामला नियत कर दिया । आक्षेपित निर्णय में अवधारण के लिए कोई बिन्दु विरचित नहीं किया गया है । आक्षेपित निर्णय में एक अन्य अवैधता भी है । कुटुंब न्यायालय की धारा 9 यह उपबंध करती है कि न्यायालय पक्षकारों के बीच समझौते के लिए और ऐसे समझौते के लिए उन्हें राजी करने के लिए सभी प्रयास करेगा । हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 23(2) भी न्यायालय को प्रथमत: समझौता प्रक्रिया अपनाने के लिए दायित्वाधीन बनाती है । उपर्युक्त चर्चा के आधार पर न्यायालय का यह मत है कि आक्षेपित निर्णय अवैध और अनुचित है और इसलिए इसे कायम नहीं रखा जा सकता है । अत: अपील मंजूर की जाती है और तारीख 4 अप्रैल, 2015 को पारित डिक्री को पक्षकारों के बीच विवाह-विच्छेद मंजूर करने की सीमा तक अपास्त किया जाता है । न्यायालय को यह प्रतीत

होता है कि विद्वान् निचले न्यायालय ने समझौता प्रक्रिया अपनाने का कोई प्रयास नहीं किया है और इसलिए आज्ञापक प्रक्रिया के अननुपालन के आधार पर आक्षेपित निर्णय अवैध है । (पैरा 21, 22 और 23)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2014]	ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 2881 = (2014) 7 एस. सी. सी. 640 : **मालती रवि एम. डी.** बनाम **बी. वी. रवि एम. डी.** ;	13
[2013]	ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 415 : **यू. श्री** बनाम **यू. श्रीनिवास** ;	20
[2013]	ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 2176 = (2013) 5 एस. सी. सी. 226 : **के. एस. श्रीनिवास राव** बनाम **डी. ए. दीपा** ;	18
[2012]	ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 2586 = (2012) 7 एस. सी. सी. 288 : **विश्वनाथ अग्रवाल** बनाम **सरला विश्वनाथ अग्रवाल** ;	18
[2011]	ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 114 : **गुरुबख्श सिंह** बनाम **हरमिन्दर कौर** ;	18
[2010]	ए. आई. आर. 2010 एस. सी. (सप्ली.) 544 = (2010) 4 एस. सी. सी. 476 : **रवि कुमार** बनाम **जुल्मी देवी** ;	18
[2007]	ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1426 : **माया देवी** बनाम **जगदीश प्रसाद** ;	17
[2007]	ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 2083 = (2007) 2 एस. सी. सी. 564 : **जगराज सिंह** बनाम **बीरपाल कौर** ;	22

[2002] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 1447 :
अंजुला वर्मा बनाम **सुधीर वर्मा** ; 18

[2002] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 591 :
सावित्री पांडेय बनाम **प्रेम चन्द्र पांडेय** ; 13

[2002] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 88 :
अध्यात्मा भत्तार बनाम **अध्यात्मा भत्तार श्रीदेवी** ; 13

[1998] ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 764 =
(1997) 11 एस. सी. सी. 701 :
बलविंदर कौर बनाम **हरदीप सिंह** । 22

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2015 की प्रथम अपील सं. 275.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री के. पी. तिवारी

प्रत्यर्थी की ओर से श्री हरे कृष्ण त्रिपाठी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति प्रदीप कुमार श्रीवास्तव ने दिया ।

न्या. श्रीवास्तव – यह अपील मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, झांसी द्वारा 2013 के वाद सं. 177 (मुकेश सोनी बनाम श्रीमती निशा सोनी) जो हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(क) के अधीन फाइल किया गया था, वाले मामले में तारीख 4 अप्रैल, 2015 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा वादी-प्रत्यर्थी की विवाह-विच्छेद की अर्जी पक्षकारों के बीच तारीख 18 जून, 2005 को संपन्न विवाह को विघटित करते हुए डिक्री की गई है ।

2. आक्षेपित निर्णय और डिक्री को इस आधार पर आक्षेपित किया गया है कि चूंकि विद्वान् निचले न्यायालय ने अनुमानों और संकल्पनाओं के आधार पर निर्णय पारित किया है इसलिए यह निर्णय अनुचित है । विवाह-विच्छेद के आधार अभिवचनों के परे हैं और इसलिए विद्वान् निचले न्यायालय ने प्रतिवादी-अपीलार्थी के ऊपर सबूत का भार डालकर अवैधता कारित की है । वादी-प्रत्यर्थी द्वारा कोई क्रूरता साबित

नहीं की गई है । विद्वान् निचले न्यायालय ने प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अधीन फाइल किए गए वाद के लंबन पर भी विचार नहीं किया है । चूंकि निर्णय विधि के प्रतिकूल है इसलिए आक्षेपित निर्णय और डिक्री अपास्त किए जाने योग्य है ।

3. वादी-प्रत्यर्थी मुकेश सोनी द्वारा विवाह-विच्छेद की अर्जी यह कहते हुए अभित्यजन के आधार पर हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i-ख) के अधीन विद्वान् निचले न्यायालय के समक्ष फाइल की गई थी कि पक्षकारों का विवाह तारीख 18 जून, 2005 को हिन्दू रीति-रिवाजों और परंपराओं के अनुसार संपन्न हुआ था । विवाह के पश्चात् वादी और प्रतिवादी दोनों ने ही साथ-साथ रहना और पति तथा पत्नी के रूप में अपने दाम्पत्य दायित्वों को पूरा करना आरंभ कर दिया । विवाह के पश्चात् वे दोनों झांसी स्थित वादी के मकान में रह रहे थे । वादी ने प्रतिवादी को शिकायत का कोई अवसर नहीं दिया । वादी विवाह के समय बेरोजगार था । उसके पिता जीवित नहीं थे । प्रतिवादी ने वादी की माता के साथ रहना आरंभ कर दिया और उसको तंग करना आरंभ कर दिया । इसके पश्चात् वादी को भारतीय रेल विभाग में नौकरी मिल गई और उसे ब्रह्मपुर, उड़ीसा में तैनात किया गया था और वहां रहकर उसने अपनी सेवा आरंभ की । समय-समय पर वह झांसी में अपनी माता और पत्नी से मिलने के लिए आया करता था । प्रतिवादी ने उसकी माता को अत्यधिक परेशान करना आरंभ कर दिया और वह अत्यधिक व्यथित हुई और अंततः तारीख 10 दिसंबर, 2012 को उसकी मृत्यु हो गई । इसके पश्चात् प्रतिवादी सभी आभूषणों और दान में मिली वस्तुओं जो उसे विवाह के समय दी गई थीं, को साथ लेकर अपने माता-पिता के मकान पर चली गई । वादी ने उसके माता-पिता से शिकायत की किन्तु उन्होंने कुछ नहीं किया और उसकी पत्नी का साथ देते हुए उसके साथ झगड़ा करना आरंभ कर दिया । वादी प्रतिवादी को झांसी ले आया और कुछ दिनों के पश्चात् वह उसे उड़ीसा ले गया किन्तु उसकी पत्नी ने ग्वालियर में अपने माता-पिता के साथ रहने पर ज़ोर दिया । तीन वर्ष बीत जाने के पश्चात् भी उन दोनों का कोई बच्चा उत्पन्न नहीं

हुआ । वादी ने ब्रहम पुर, उड़ीसा और झांसी में अपनी पत्नी का हर संभव उपचार कराया । इसके पश्चात् प्रतिवादी ने इस आधार पर अपने मायके जाने पर ज़ोर दिया कि वह वहां जाकर अपना ठीक से उपचार कराएगी । जब वादी ने उसे रोकना चाहा तो उसने घर का काम-काज करना बंद कर दिया और अक्सर झगड़ा करने लगी । उसने उसके साथ मारपीट भी की । इसके पश्चात् वादी प्रतिवादी को उसके मायके भेजने के लिए तैयार हो गया ।

4. वादी मार्च, 2009 में अपनी पत्नी को झांसी से ब्रहम पुर, उड़ीसा ले आया और उसका उपयुक्त उपचार कराया । चिकित्सकों ने यह सलाह दी कि बच्चे के जन्म के लिए उसकी पत्नी टैस्ट-ट्यूब उपचार करा सकती है । वादी ने उड़ीसा में अपनी पत्नी को यह कहते हुए ए. टी. एम. कार्ड भी दिया था कि चूंकि वह उसके साथ नहीं रह रहा है इसलिए वह जब भी चाहे, ए. टी. एम. से धन निकाल सकती है और वह जब भी उसके पास आएगा तो उसके खर्चों के लिए और धन प्रदान करेगा । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी द्वारा अपनी पत्नी के माता-पिता को सूचना देने पर वे झांसी उसे लेने आए और झांसी से ग्वालियर गए । दिसंबर, 2010 में वादी झांसी आया और उसने प्रतिवादी को झांसी बुलाया और वह वहां दिसंबर, 2010 तक रहता रहा । चिकित्सक ने जांच पूरी करने के पश्चात् टैस्ट-ट्यूब बेबी उपचार के लिए सलाह दी और तब वादी ने दिसंबर, 2010 में ग्वालियर में उसका उपचार कराना आरंभ किया और तब से उनके बीच कोई शारीरिक संबंध नहीं हुए हैं और न ही प्रतिवादी ने उसे शारीरिक संबंध बनाने के लिए अनुज्ञात किया । फरवरी, 2011 में टैस्ट-ट्यूब उपचार कराया गया तथापि, अप्रैल, 2011 में गर्भपात हो गया । वादी ने उपचार के सभी खर्चे उठाए और हर प्रकार से सावधानी बरती और अपनी पत्नी की सेवा की । पक्षकारों के बीच पिछले दो वर्षों से कोई शारीरिक संबंध नहीं बने हैं । प्रतिवादी और उसके कुटुंब ने उसके साले अनिल के विवाह में उसे आमंत्रित नहीं किया और न ही उसके विवाह के बारे में कोई इत्तिला दी । वादी ने तारीख 3 फरवरी, 2012 से तारीख 16 फरवरी, 2012 तक के लिए आरक्षण

कराया था और प्रतिवादी को वापस लाने के लिए गया था । उसने पुन: तारीख 29 जून, 2012 से तारीख 5 जुलाई, 2012 तक के लिए आरक्षण कराया किन्तु प्रतिवादी और उसके कुटुंब के सदस्यों ने उसे बेइज्जत करके वापस भेज दिया । इसके पश्चात् पुन: वादी तारीख 14 फरवरी, 2013 को अपने कतिपय नातेदारों के साथ अपनी पत्नी को ग्वालियर से वापस लाने के लिए गया था तथापि, उसकी पत्नी ने उसके साथ आने और रहने से इनकार कर दिया । वाद हेतुक अंतिम रूप से तारीख 14 फरवरी, 2013 को उत्पन्न हुआ जब उसकी पत्नी ने झांसी में उसके साथ आने और रहने से इनकार कर दिया क्योंकि दोनों पक्षकार इस अर्जी को पेश करने से पूर्व अंतिम बार झांसी में साथ-साथ रह रहे थे ।

5. प्रतिवादी-अपीलार्थी ने अपना लिखित कथन फाइल किया था जिसमें उसने विवाह को स्वीकार किया और यह भी स्वीकार किया कि पति और पत्नी दोनों ही झांसी में साथ-साथ रह रहे थे । उसने यह भी स्वीकार किया कि विवाह के समय वादी बेरोजगार था और उसके पिता की उसके विवाह के पहले ही मृत्यु हो चुकी थी । उसने यह भी स्वीकार किया कि वह वादी की माता के साथ रही थी । उसने वादपत्र में किए गए अन्य अभिकथनों से इनकार करते हुए यह अभिकथन किया कि विवाह के पश्चात् वह अपनी ससुराल में रह रही थी और उसके पश्चात् वह अपने माता-पिता के पास वापस आ गई । जब वह दूसरी बार अपनी ससुराल गई तो वादी और उसके कुटुंब के सदस्यों ने कम दहेज देने के बारे में शिकायत करना और यह कहते हुए उसे तंग करना आरंभ कर दिया कि वह पर्याप्त दहेज नहीं लाई है । उन्होंने उस पर उसके माता-पिता से और धन लाने के लिए दबाव डालना आरंभ कर दिया ।

6. विवाह के पश्चात् ससुराल आने पर उसे यह पता चला कि वादी मिरगी का रोगी है और यह तथ्य उससे छुपाया गया था । उसने अपने पति की माता को कभी भी परेशान नहीं किया और वह उसके साथ शांतिपूर्वक रही । यह कहना गलत है कि वह सभी आभूषणों और दान में प्राप्त वस्तुओं जो विवाह के समय उसे दी गई थी, के साथ अपने माता-पिता के पास चली आई । उसने कभी भी झगड़ा नहीं किया । वादी

बेरोजगार था और वह यह कहता था कि उसे नौकरी प्राप्त करने के लिए 2,00,000/- रुपए की आवश्यकता है और इसलिए प्रतिवादी के अनुरोध पर उसके पिता 2,00,000/- रुपए का इंतजाम करके वादी को देंगे और इसके पश्चात् वादी को रेल विभाग में नौकरी मिल गई । वह उड़ीसा में जहां उसकी तैनाती हुई थी, रहने लगा । प्रतिवादी ने स्वयं को उड़ीसा में अपने साथ रखने के लिए जोर दिया किन्तु वह टालता रहा और उसके दो-तीन बार अत्यधिक जोर देने पर वह उसे उड़ीसा लेकर आया और कुछ दिनों के पश्चात् वह उसे पुन: झांसी में उसकी ससुराल में छोड़कर चला गया जहां प्रतिवादी अपनी सास और अपने पति के भाइयों के साथ रहने लगी जो नियमित रूप से उसे तंग करते थे । उन्होंने अप्रैल, 2012 में उससे उसकी ससुराल छोड़कर जाने के लिए जोर दिया और तब से वह ग्वालियार में अपने माता-पिता के साथ रह रही है । उसने फोन पर यह प्रयास किया कि वादी उसे उड़ीसा ले जाए और उसे अपने साथ रखे किन्तु वादी टालता रहा और उसे उसके माता-पिता के साथ रहने के लिए मजबूर किया । यह कहना गलत है कि उसके बच्चे के जन्म के लिए उसका ब्रह्मपुर, उड़ीसा में और झांसी में उपचार कराया गया था । यह भी सही नहीं है कि फरवरी, 2011 में उसका टैस्ट-ट्यूब बेबी उपचार कराया गया था और अप्रैल, 2011 में उसका गर्भपात हुआ था और इसके पश्चात् वादी ने उसके उपचार के लिए खर्चे दिए थे ।

7. इसके प्रतिकूल वादी ग्वालियर में प्रतिवादी को लेने आया और उसने हर प्रकार से वचन देते हुए और प्रलोभन देते हुए यह कहा कि वह उसे उड़ीसा ले जाएगा । जब मार्च और अप्रैल, 2011 में प्रतिवादी गर्भवती हुई तो वादी उसके पास आया और प्रतिवादी द्वारा आपत्ति किए जाने के बावजूद उसने बलपूर्वक उसके साथ मैथुन करने के लिए शारीरिक संबंध बनाए और इसलिए प्रतिवादी का गर्भपात हो गया । प्रतिवादी के माता-पिता ने उसका उपचार कराया और वादी द्वारा उसे कोई वित्तीय सहायता या किसी अन्य प्रकार की सहायता नहीं दी गई । प्रतिवादी ने अपने छोटे भाई और बहिन के विवाह में वादी को आमंत्रित किया था किन्तु वह नहीं आया । प्रतिवादी की टांगों में मामूली सी विकलता है और यह बात वादी और उसके कुटुंब को भलीभांति मालूम

थी तथापि, वादी के बेरोजगार होने के कारण उसका विवाह होना संभव नहीं था इसलिए उसने प्रतिवादी के साथ विवाह किया था । वादी को रेल विभाग में नौकरी मिलने के पश्चात् उसे अच्छा वेतन मिलने लगा और उसने दूसरा विवाह करने के लिए प्रतिवादी को राजी करने का प्रयत्न किया । इस मामले में कोई वाद हेतुक उत्पन्न नहीं हुआ है और इसलिए वाद खारिज किए जाने योग्य है ।

8. पक्षकारों ने अपने अभिकथनों के समर्थन में मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए । वादी मुकेश सोनी ने पी. डब्ल्यू. 1 के रूप में स्वयं की परीक्षा कराई । श्रीमती निशा सोनी ने डी. डब्ल्यू. 1 के रूप में स्वयं की परीक्षा कराई और प्रतिवादी ने अपने पिता सुरेश सोनी की डी. डब्ल्यू. 2 के रूप में परीक्षा कराई । प्रतिवादी ने अपने चिकित्सीय उपचार से संबंधित दस्तावेज और कतिपय रेल टिकट भी फाइल किए हैं ।

9. विद्वान् निचले न्यायालय ने पक्षकारों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् विवाह-विच्छेद के लिए वादी की अर्जी डिक्री कर दी और तारीख 18 जून, 2005 को हुए पक्षकारों के विवाह के संबंध में विवाह-विच्छेद मंजूर कर दिया ।

10. प्रतिवादी-अपीलार्थी श्रीमती निशा सोनी ने आक्षेपित निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर वर्तमान अपील फाइल की है ।

11. अपीलार्थी की ओर से यह दलील दी गई है कि वादी द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i-ख) के अधीन फाइल की गई थी । हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i-ख) विवाह-विच्छेद के लिए अभित्यजन को एक आधार के रूप में उपबंधित करती है :-

> "धारा 13(1)(i-ख) - दूसरे पक्षकार ने अर्जी के पेश किए जाने के अव्यवहित पूर्व कम से कम दो वर्ष की निरंतर कालावधि भर अर्जीदार को अभित्यक्त कर रखा है ।
>
> स्पष्टीकरण - इस धारा में 'अभित्यजन' पद से विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा अर्जीदार का ऐसा अभित्यजन अभिप्रेत है जो

युक्तियुक्त कारण के बिना और ऐसे पक्षकार की सम्मति के बिना या इच्छा के विरुद्ध हो और इसके अंतर्गत विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा जानबूझकर अर्जीदार की उपेक्षा करना भी है और इस पद के व्याकरणिक रूप-भेदों तथा सजातीय पदों के अर्थ तद्नुसार लगाए जाएंगे ।"

12. उक्त उपबंध के अधीन यह अपेक्षित है कि अभित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी को पेश किए जाने की तारीख से यह आवश्यक है कि प्रतिवादी द्वारा अर्जी के पेश किए जाने के अव्यवहित पूर्व दो वर्ष से अन्यून की निरंतर अवधि के लिए वादी को त्यक्त कर दिया गया हो । अत: मामले का निचोड़ यह है कि यह अवधारित किया जाए कि वादी ने वह कौन-सी तारीख बताई है जिस पर प्रतिवादी द्वारा उसका अभित्यजन किया गया है ।

13. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **सावित्री पांडेय** बनाम **प्रेम चन्द्र पांडेय**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया है कि हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन विवाह-विच्छेद का अनुरोध करने के प्रयोजन के लिए अभित्यजन पद से विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा अर्जीदार का ऐसा अभित्यजन अभिप्रेत है जहां युक्तियुक्त कारण के बिना और ऐसे पक्षकार की सम्मति के बिना दूसरे पक्षकार द्वारा जानबूझकर अर्जीदार की उपेक्षा की गई हो । दूसरे शब्दों में जहां विवाह के दायित्वों को पूर्णतया त्यक्त कर दिया गया है । **अध्यात्मा भत्तार** बनाम **अध्यात्मा भत्तार श्रीदेवी**[2] वाले मामले में यह अधिकथित किया गया था कि अभित्यजन के अधार पर विवाह-विच्छेद के दावे को सफल बनाने के लिए अर्जी को पेश करने से पूर्व दो वर्ष की संपूर्ण कानूनी अवधि के दौरान स्थायित्व के तत्व के साथ पृथक्करण का तथ्य साबित किया जाना चाहिए । माननीय उच्चतम न्यायालय ने **मालती रवि एम. डी.** बनाम **बी. वी. रवि एम. डी.**[3] वाले मामले में अभित्यजन के आधार पर आधारित विवाह-विच्छेद के किसी दावे के लिए आवश्यक तथ्यों के सबूत

---

[1] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 591.

[2] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 88.

[3] ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 2881 = (2014) 7 एस. सी. सी. 640.

की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए यह अधिकथित किया है कि स्थायी रूप से विवाह विघटन और साथ न रहने के आशय के साथ वाद को पेश करने के अव्यवहित पूर्व दो वर्षों के लिए पृथक्करण का तथ्य और दूसरे पक्षकार को ससुराल छोड़ने के लिए सम्मति का अभाव अथवा युक्तियुक्त कारण प्रदान करने का आचरण साबित किया जाना चाहिए ।

14. वादपत्र के पैरा 8 के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि वादी ने यह अभिकथित किया है कि फरवरी, 2011 में टैस्ट-ट्यूब उपचार कराया गया था और अप्रैल, 2011 में गर्भपात हो गया था और इसके पश्चात् वादी ने अपने खर्चे पर पूर्ण रूप से उपचार कराया और प्रतिवादी की हर प्रकार से देखभाल और सेवा की । इससे यह उपदर्शित होता है कि अप्रैल, 2011 के पश्चात् किसी तारीख को जिसके बारे में वादपत्र में विनिर्दिष्ट रूप से नहीं कहा गया है, वादी को परित्यक्त कर दिया गया था । स्वयं उसकी स्वीकृति के अनुसार टैस्ट-ट्यूब उपचार किया गया था जिसके द्वारा वह गर्भवती हुई थी और इसके पश्चात् अप्रैल, 2011 में गर्भपात हो गया था और तत्पश्चात् उसका उपचार कराया गया था और यह उपचार वादी द्वारा स्वयं अपने खर्चों पर कराया गया था । नैसर्गिक रूप से उस समय तक अभित्यजन का कोई अवसर नहीं था जब तक प्रतिवादी उपचाराधीन रही थी और तब तक गर्भपात के पश्चात् जब तक वादी ने उसकी सेवा की । निचले न्यायालय के अभिलेख पर उपलब्ध उपचार के कागज निर्मोचन टिकट से जो तारीख 11 अप्रैल, 2011 से तारीख 25 अप्रैल, 2011 तक का है, यह प्रकट होता है कि प्रतिवादी को कल्याण मेमोरियल हास्पीटल, ग्वालियर में भर्ती कराया गया था । स्वयं वादी ने यह अभिवचन करते हुए स्वीकार किया है कि गर्भपात के लिए उपचार के दौरान और उसके पश्चात् भी वादी ने अपनी पत्नी की देखभाल की थी और उपचार के खर्चे उठाए थे और उसके पश्चात् भी देखभाल और सेवा की थी जैसा कि वादी द्वारा स्वयं अभिकथित किया गया है कि उपचार के पूर्व देखभाल और सेवा सहित अभित्यजन, यदि कोई हो, मई, 2011 में आरंभ हुआ था । इस अवधि या तारीख के पूर्व इस अभिकथन का कि वह ग्वालियर में रह रही थी और वह वादी के साथ नहीं रह रही थी, कोई महत्व नहीं रह जाता है क्योंकि वादी ने

स्वयं अपने आचरण द्वारा उसको माफ़ कर दिया था । इससे यह भी उपदर्शित होता है कि इस बारे में न केवल युक्तियुक्त कारण मौजूद था अपितु पत्नी के लिए ग्वालियर में रहने के लिए उसकी सम्मति भी थी क्योंकि वह टैस्ट-ट्यूब बच्चे के लिए उपचाराधीन थी और उसका गर्भपात हुआ था ।

15. वादपत्र में जो कुछ कहा गया है, उस पर विश्वास करते हुए अप्रैल, 2011 के अंत में या उस मास के ठीक पश्चात् प्रतिवादी द्वारा उसका अभित्यजन कर दिया गया था । वादपत्र के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि वादी द्वारा वादपत्र तारीख 29 मार्च, 2013 को फाइल किया गया था । इसका यह अर्थ है कि अर्जी दो वर्ष पूर्ण होने से पहले ही फाइल की गई थी । किसी भी स्थिति में अभित्यजन की दो वर्ष की अवधि अप्रैल, 2013 के अंत में या मई, 2013 में पूरी होती है जबकि अर्जी मार्च, 2013 में फाइल की गई है । अत: 2 वर्ष के अभित्यजन की प्रथम अपेक्षा वादपत्र पेश किए जाने के समय पूरी नहीं हुई थी । विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा इस तथ्य की उपेक्षा की गई है । इसके प्रतिकूल संपूर्ण निर्णय के परिशीलन से उस तारीख के बारे में कोई निष्कर्ष निकालना कठिन है जिस पर प्रतिवादी द्वारा वादी का अभित्यजन किया गया अथवा हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन यथा अपेक्षित अभित्यजन के बारे में कोई निष्कर्ष निकालना भी कठिन है । आक्षेपित निर्णय से यह उपदर्शित होता है कि विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि वादी ने प्रतिवादी को अपना ए. टी. एम. कार्ड दे दिया था और प्रतिवादी ने तारीख 5 जनवरी, 2011 से तारीख 27 मार्च, 2012 तक उसका उपयोग किया था । यह संभावना भी नहीं बनती है कि प्रतिवादी की ओर से दो वर्ष का अभित्यजन किया गया था । इसके पश्चात् भी आश्चर्यजनक रूप से विद्वान् निचले न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि वादी ने अपने शपथपत्र में यह कहा है कि प्रतिवादी दिसंबर, 2010 से अपने मायके में रह रही है और इसलिए उसका प्रतिवादी के साथ कोई शारीरिक संबंध नहीं हुआ था ।

16. विद्वान् निचले न्यायालय ने अभिवचनों के परे प्रतिवादी पर आरोपित क्रूरता के बारे में विवेचना की है जबकि इस बारे में वादपत्र में

ऐसा कोई आधार अभिकथित नहीं किया गया है और न ही इस आधार पर विवाह-विच्छेद अर्जी फाइल की गई थी । यह भी आश्चर्यजनक है कि विद्वान् निचले न्यायालय ने क्रूरता के आधार पर हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i-क) के अधीन विवाह-विच्छेद की अर्जी को डिक्री किया है । विद्वान् निचला न्यायालय क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद मंजूर करते समय अभिवचनों के बाहर गया है और इस बात की अनदेखी की है कि वादी-प्रत्यर्थी ने क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद न चाहते हुए अभित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए अनुरोध किया है । इस प्रक्रिया में निचले न्यायालय द्वारा सबूत का भार गलत रूप से प्रतिवादी पर डाला गया है जबकि विधि के अधीन यह साबित करने का भार वादी पर है कि वह अपने आधारों को साबित करे । वादी ने अपने कथन के समर्थन में स्वयं के सिवाय किसी अन्य साक्षी की परीक्षा नहीं कराई है । यदि बहस के लिए यह उपधारित कर लिया जाए कि वादपत्र में क्रूरता के अभिवचन का कोई तत्व या साक्ष्य है तो भी विद्वान् निचले न्यायालय को हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 में उत्तर प्रदेश संशोधन को ध्यान में रखना चाहिए था । धारा 13(1)(i-क) इस प्रकार प्रतिस्थापित की गई है :-

> "i-क. अर्जीदार के साथ निरंतर रूप से या बार-बार ऐसी क्रूरता की गई हो जिससे अर्जीदार के मस्तिष्क में यह युक्तियुक्त आशंका हो कि अर्जीदार द्वारा दूसरे पक्षकार के साथ रहना नुकसानदेह या क्षतिपूर्ण होगा ।"

17. क्रूरता को हिन्दू विवाह अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने **माया देवी** बनाम **जगदीश प्रसाद**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया है कि धारा 13 में 'क्रूरता' पद को वैवाहिक कर्तव्यों और दायित्वों के संबंध में मानव आचरण या मानव व्यवहार के संबंध में प्रयुक्त किया गया है । क्रूरता किसी व्यक्ति का ऐसा कार्य या आचरण है जो दूसरे पक्ष को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है । क्रूरता मानसिक या शारीरिक, साशय या बिना आशय के हो

---

[1] ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1426.

सकती है । यदि यह शारीरिक है तो न्यायालय को इसका अवधारण करने में कोई कठिनाई नहीं होगी । यह तथ्य या डिग्री का प्रश्न है । यदि यह मानसिक है तो समस्या कठिन हो जाएगी । प्रथमत:, क्रूरतापूर्ण आचरण की प्रकृति के बारे में जांच की जानी चाहिए और द्वितीयत: दूसरे पक्ष के मस्तिष्क में ऐसे आचरण के प्रभाव के बारे में जांच की जानी चाहिए कि क्या इससे यह युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न होती है कि दूसरे पक्ष को पहुंचने या क्षति पहुंचने की आशंका है । अंतत: यह निष्कर्ष निकालने की विषयवस्तु है जिसके आधार पर आचरण की प्रकृति और शिकायत करने वाले पति या पत्नी पर इसके प्रभाव के बारे में निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए । तथापि, ऐसा मामला भी हो सकता है जहां शिकायत किया गया आचरण पूर्ण रूप से गलत हो और साथ ही साथ अविधिमान्य या अवैध हो । तब दूसरे पक्ष पर पड़ने वाले प्रभाव या क्षति के बारे में जांच करने या विचार करने की आवश्यकता नहीं है । ऐसे मामले में क्रूरता तब साबित हो जाएगी जब स्वयं आचरण साबित होता है या स्वीकार किया जाता है ।

18. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **अंजुला वर्मा** बनाम **सुधीर वर्मा**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया है कि किसी सफल विवाह का आधार सहनशक्ति, समायोजन और एक-दूसरे का सम्मान करना है । कतिपय खंडनीय सीमा तक एक-दूसरे के दोष को सहन करना प्रत्येक विवाह में अन्तर्निहित होता है । **रवि कुमार** बनाम **जुल्मी देवी**[2] वाले मामले में क्रूरता पद का आपसी सम्मान का अभाव और पति-पत्नी के बीच समझदारी का अभाव जो नातेदारी में खटास पैदा करता हो, अर्थ में निर्वचन किया गया था । जैसा कि **विश्वनाथ अग्रवाल** बनाम **सरला विश्वनाथ अग्रवाल**[3] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है कि यह सदैव ही उन पक्षकारों के सामाजिक स्तर या वातावरण पर निर्भर करता है, जिससे पक्षकार संबंधित हैं और उनके जीवन-यापन के तरीकों,

---

[1] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 1447.

[2] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. (सप्ली.) 544 = (2010) 4 एस. सी. सी. 476.

[3] ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 2586 = (2012) 7 एस. सी. सी. 288.

नातेदारी, मानसिक स्थिति और मनोभावों पर निर्भर करता है जो कि उनकी सामाजिक हैसियत की शर्तें हैं । **के. एस. श्रीनिवास राव** बनाम **डी. ए. दीपा**[1] वाले मामले में यह उपदर्शित किया गया था कि यह साबित है कि दम्पत्ति में से एक ने दूसरे के साथ इस प्रकार का व्यवहार किया है और स्पष्ट रूप से ऐसे मनोभाव उपदर्शित किए हैं जो दूसरे के मस्तिष्क में यह युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न करते हैं कि उसके द्वारा दूसरे के साथ रहना नुकसानदेह या क्षतिपूर्ण होगा । **गुरुबख्श सिंह** बनाम **हरमिन्दर कौर**[2] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि किसी अवसर पर यदा-कदा घटनाएं क्रूरता के बराबर नहीं मानी जा सकतीं । सभी झगड़ों का मूल्यांकन करते समय पक्षकारों की शारीरिक और मानसिक स्थिति और उनके चरित्र तथा सामाजिक परिस्थिति को दृष्टिगत करते हुए प्रत्येक विशिष्ट मामले में क्रूरता का अवधारण किया जाना चाहिए । अत्यंत तकनीकी और अतिसंवेदनशील सोच विवाह के बंधन को विघटित करने वाली होगी । न्यायालयों को आदर्श पतियों और आदर्श पत्नियों को ध्यान में रखते हुए विचार नहीं करना चाहिए । न्यायालय को अपने समक्ष के विशिष्ट पुरुष और विशिष्ट स्त्री को ध्यान में रखना चाहिए । वैवाहिक न्यायालयों को आदर्श पति-पत्नी या मात्र आदर्शवाद को आधार नहीं बनाना चाहिए ।

19. आक्षेपित निर्णय के परिशीलन से हमें यह प्रतीत होता है कि विद्वान् निचले न्यायालय ने इस आशय का कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया है कि अपीलार्थी की ओर से पति के साथ ऐसी कोई क्रूरता बरती गई थी जो अर्जीदार के मस्तिष्क में यह युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न करती हो कि अर्जीदार के लिए अपनी पत्नी के साथ रहना नुकसानदेह या क्षतिपूर्ण होगा ।

20. **यू. श्री** बनाम **यू. श्रीनिवास**[3] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित

---

[1] ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 2176 = (2013) 5 एस. सी. सी. 226.

[2] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 114.

[3] ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 415.

किया गया था कि विद्वान् निचला न्यायालय इस बात के लिए स्वतंत्र नहीं है कि ऐसे किसी आधार पर विवाह-विच्छेद को मंजूर करे जिसका उल्लेख अर्जी में नहीं किया गया है । जहां विवाह-विच्छेद के लिए अभित्यजन के किसी आधार का अभिवचन या अनुरोध नहीं किया गया है, वहां निचले न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद को मंजूर करने के लिए अभित्यजन का निष्कर्ष निकालना त्रुटिपूर्ण है । इसी तर्क के आधार पर हमारा यह मत है कि जहां केवल अभित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद का अनुरोध किया गया है वहां न्यायालय क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद मंजूर नहीं कर सकता । इसके अतिरिक्त अपीलार्थी की ओर से दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के अनुतोष की ईप्सा करते हुए हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अधीन अर्जी की एक प्रति भी फाइल की गई है तथापि, निचले न्यायालय द्वारा इसकी अनदेखी की गई है ।

21. विद्वान् निचले न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय पारित करते समय विधिक प्रक्रिया को लागू नहीं किया है । इस बारे में न तो कोई विवाद्यक विरचित किया गया है और न ही अवधारण के लिए कोई मुद्दा बनाया गया है । कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 10 यह उपबंध करती है कि कुटुंब न्यायालय के समक्ष के सभी वादों और कार्यवाहियों को सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध लागू होंगे । हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 21 भी यह उपबंध करती है कि अधिनियम के अधीन कार्यवाहियां सिविल प्रक्रिया संहिता द्वारा विनियमित होंगी । इसके अतिरिक्त कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 17 यह उपबंध करती है कि किसी कुटुंब न्यायालय के निर्णय में मामले के संक्षिप्त कथन, अवधारण के लिए मुद्दा और उस पर विनिश्चय तथा ऐसे विनिश्चय के लिए कारणों का उल्लेख होगा । सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 14 पक्षकारों द्वारा अभिवचन पेश किए जाने के पश्चात् विवाद्यक विरचित किए जाने के बारे में उपबंध करता है जिससे कि उनके बीच विवाद का सही निर्धारण हो सके और उन मुद्दों पर पक्षकार अपना-अपना साक्ष्य पेश करने में समर्थ हो सकें । हमें सम्पूर्ण आदेश-पत्रक और निर्णय के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि विद्वान् कुटुंब

न्यायालय ने प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन फाइल करने की तारीख पर विवाद्यक विरचित किए बिना साक्ष्य के लिए मामला नियत कर दिया । आक्षेपित निर्णय में अवधारण के लिए कोई बिन्दु विरचित नहीं किया गया है ।

22. आक्षेपित निर्णय में एक अन्य अवैधता भी है । कुटुंब न्यायालय की धारा 9 यह उपबंध करती है कि न्यायालय पक्षकारों के बीच समझौते के लिए और ऐसे समझौते के लिए उन्हें राजी करने के लिए सभी प्रयास करेगा । हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 23(2) भी न्यायालय को प्रथमत: समझौता प्रक्रिया अपनाने के लिए दायित्वाधीन बनाती है । **बलविंदर कौर** बनाम **हरदीप सिंह**[1] और **जगराज सिंह** बनाम **बीरपाल कौर**[2] वाले मामलों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि समझौता प्रक्रिया अपनाए बिना कोई डिक्री विधित: कायम रखे जाने योग्य नहीं है । हमें यह प्रतीत होता है कि विद्वान् निचले न्यायालय ने समझौता प्रक्रिया अपनाने का कोई प्रयास नहीं किया है और इसलिए आज्ञापक प्रक्रिया के अननुपालन के आधार पर आक्षेपित निर्णय अवैध है ।

23. उपर्युक्त चर्चा के आधार पर हमारा यह मत है कि आक्षेपित निर्णय अवैध और अनुचित है और इसलिए इसे कायम नहीं रखा जा सकता है । अत: अपील मंजूर की जाती है और तारीख 4 अप्रैल, 2015 को पारित डिक्री को पक्षकारों के बीच विवाह-विच्छेद मंजूर करने की सीमा तक अपास्त किया जाता है ।

24. कार्यालय को यह निदेश दिया जाता है कि वह संबंधित न्यायालय को अनुपालन के लिए इस आदेश की प्रति के साथ इस मामले का मूल अभिलेख वापस भेजे ।

अपील मंजूर की गई ।

मह.

---

[1] ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 764 = (1997) 11 एस. सी. सी. 701.

[2] ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 2083 = (2007) 2 एस. सी. सी. 564.

(2019) 2 सि. नि. प. 313 उत्तराखंड

अजय कुमार और एक अन्य

बनाम

काशीपुर अर्बन को-आपरेटिव बैंक लिमिटेड और एक अन्य

(2017 की विशेष अपील सं. 738)

तारीख 5 जुलाई, 2018

मुख्य न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ और न्यायमूर्ति शरद कुमार शर्मा

प्रतिभूतिकरण और वित्तीय आस्तियों का पुनर्गठन और प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (2002 का 54) – धारा 14(4) और 14 [सपठित उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराया और बेदखली नियंत्रण) अधिनियम, 1972 की धारा 30] – प्रतिभूत आस्तियों के कब्जेदार/किरायेदारों से कब्जा लिया जाना – मकान मालिक और किरायेदार के संबंध विवादित होने के कारण किराया नियंत्रण अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही का लंबित होना – बैंक जिला मजिस्ट्रेट से 2002 के अधिनियम की धारा 14 के अधीन अनुज्ञा प्राप्त किए बिना किरायेदारी वाले परिसर का बलपूर्वक कब्जा नहीं ले सकता ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 12 और 226 [सपठित प्रतिभूतिकरण और वित्तीय आस्तियों का पुनर्गठन और प्रतिभूत हित का प्रवर्तन अधिनियम की धारा 13(4)] – को-आपरेटिव बैंक का राज्य की परिभाषा में सम्मिलित होने का प्रश्न अंतर्वलित होना – को-आपरेटिव बैंक अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत न तो राज्य है और न ही प्राधिकारी – बैंक की कार्रवाई के विरुद्ध रिट याचिका पोषणीय नहीं होगी ।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि अपीलार्थियों/रिट याचियों का पक्षकथन यह है कि वे संपत्ति के किरायेदार हैं और इसलिए उनको सरफेसी अधिनियम के अंतर्गत संस्थित कार्यवाहियों के अंतर्गत निष्काषित नहीं किया जा सकता । इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपीलार्थियों/रिट याचियों की इन दलीलों में कोई बल नहीं

पाया और विचार व्यक्त किया कि अपीलार्थियों को उक्त कार्यवाहियों को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है चूंकि अपीलार्थियों को जो भी अधिकार प्राप्त है, वे केवल किरायेदार की हैसियत तक सीमित हैं, अपीलार्थियों को मकान मालिक, जो विनिर्दिष्ट रूप से बकायेदार है, से बेहतर अधिकार प्राप्त नहीं है और वास्तव में मकान मालिक ही है जो न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो सकता था और अपीलार्थी को किरायेदार की हैसियत में 2002 के अधिनियम के अंतर्गत वर्तमान कार्यवाहियों को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है । अत: विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई रिट याचिका को पोषणीय नहीं पाया गया और उसको खारिज कर दिया गया । इस आदेश को पूर्ण न्यायपीठ के समक्ष आक्षेपित किया गया । इस मामले में प्रथम प्रत्यर्थी/बैंक द्वारा 2002 के प्रतिभूतिकरण और वित्तीय आस्तियों का पुनर्गठन और वित्तीय हित का प्रवर्तन अधिनियम की धारा 13(4) के अधीन याची के विरुद्ध कार्यवाही आरंभ की गई थी । अन्य शब्दों में इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध देयों को उसकी संपत्तियों से वसूल किए जाने की ईप्सा की गई है जो अपीलार्थी के अनुसार किरायेदार होने के नाते उसके अधिभोग में हैं और जिसको बैंक के अनुसार प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा उनके पक्ष में आडमान किया गया था और बैंक द्वारा उसको प्रतिभूत आस्ति माना जाता है, अत: बैंक द्वारा कार्रवाई आरंभ की गई थी । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस मामले में हम माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा जो अधिकथित किया गया है, को ध्यान में रखते हुए प्रत्यर्थी बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल द्वारा जिस अनुक्रम का पालन किए जाने का सुझाव दिया गया है, से इस मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए सहमत हैं । हम यह उल्लेख भी करते हैं कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने प्रत्यर्थियों को सूचना जारी किए जाने के लिए आदेशित किए बिना ही रिट याचिका खारिज कर दी थी । खंडन शपथपत्र फाइल करने का भी अवसर प्रदान नहीं किया गया था । इसमें कोई संदेह नहीं कि यह सत्य है कि प्रथम प्रत्यर्थी ने इस अपील में खंडन शपथपत्र

फाइल किया है । हम समझते हैं कि अपीलार्थियों का हित भी तभी संरक्षित होगा जब हम प्रथम प्रत्यर्थी के निवेदनों को अभिलिखित करेंगे क्योंकि उसने अपीलार्थियों द्वारा पक्ष बनाए जाने पर और जिला मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 14 के अधीन आरंभ की गई कार्यवाहियों में सूचना जारी किए जाने पर अपनी दलीलें प्रस्तुत की थीं । तद्नुसार अपील का निस्तारण किया जाता है । हम प्रथम प्रत्यर्थी/बैंक के इस निवेदन को अभिलिखित करते हैं कि बैंक संपत्ति का बलपूर्वक कब्जा नहीं लेगा और कब्जा तभी लेगा जब इसकी अनुज्ञा अधिनियम की धारा 14 के अधीन जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्रदान की जाए । जिला मजिस्ट्रेट अपीलार्थियों को सूचना जारी करेगा और उनको किरायेदार के रूप में अपने पक्षकथन को साबित करने और अपनी दलीलें प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करेगा । हम यह स्पष्ट करते हैं कि यदि प्रथम प्रत्यर्थी जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होता है तो जिला मजिस्ट्रेट विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में की गई मताभिव्यक्ति से प्रभावित हुए बिना मामले पर विचार करेगा और माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा हर्षद गोवर्धन सोंदागर वाले मामले में अधिकथित विधि के प्रकाश में मामले पर विचार करेगा । (पैरा 9 और 10)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2014]	(2014) 6 एस. सी. सी. 1 : **हर्षद गोवर्धन सोंदागर** बनाम **इंटरनेशनल एसेट रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड और अन्य** ।	5, 7

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की विशेष अपील सं. 738.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

अपीलार्थियों की ओर से	श्री तपन सिंह
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री गोपाल के. वर्मा और देवेश विश्नोई

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति के. एम. जोसेफ ने दिया ।

मु. न्या. जोसेफ – रिट याची अपीलार्थी हैं । रिट याचिका निम्नलिखित अनुतोषों की ईप्सा करते हुए फाइल की गई है :–

"(i) उत्प्रेक्षण की प्रकृति में प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा जारी की गई तारीख 22 अगस्त, 2017 की कब्जे की सूचना को अभिखंडित किए जाने के लिए रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए (संलग्नक संख्या 11) ।

(ii) परमादेश की प्रकृति में याचियों को प्रश्नगत दुकान से बेदखल न किए जाने के लिए प्रत्यर्थी सं. 1 को निर्देशित करते हुए रिट आदेश या निर्देश जारी किया जाए ।"

2. संक्षेप में, जिस कार्यवाही को आक्षेपित किया गया है, को प्रथम प्रत्यर्थी/बैंक द्वारा 2002 के प्रतिभूतिकरण और वित्तीय आस्तियों का पुनर्गठन और वित्तीय हित का प्रवर्तन अधिनियम (जिसको इसमें इसके पश्चात् 'सरफेसी अधिनियम' कहा गया है) की धारा 13(4) के अधीन इसमें के प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध आरंभ किया जाना तात्पर्यित है । अन्य शब्दों में इस अपील में प्रत्यर्थी पक्ष के विरुद्ध उसकी संपत्तियों से वसूल किए जाने की ईप्सा किए जाने के द्वारा देयों को वसूल किया जाना तात्पर्यित है जो अपीलार्थी के अनुसार प्रत्यर्थी सं. 2 का किरायेदार होने के नाते उसके अधिभोग में हैं और जिसको बैंक के अनुसार उनके पक्ष में आडमान किया गया था और बैंक द्वारा उसको प्रतिभूत आस्ति माना जाता है, अत: बैंक द्वारा कार्रवाई आरंभ की गई थी ।

3. अपीलार्थियों/रिट याचियों का पक्षकथन यह है कि वे संपत्ति के किरायेदार हैं और इसलिए उनको सरफेसी अधिनियम के अंतर्गत संस्थित कार्यवाहियों के अंतर्गत निष्काषित नहीं किया जा सकता । अपीलार्थियों/ रिट याचियों की इन दलीलों में कोई बल नहीं पाया और यह विचार व्यक्त किया गया कि अपीलार्थियों को उक्त कार्यवाहियों को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है चूंकि अपीलार्थियों को जो भी अधिकार प्राप्त है, वे केवल किरायेदार की हैसियत तक सीमित हैं । अपीलार्थियों को

मकान मालिक, जो विनिर्दिष्ट रूप से बकायेदार हैं, से बेहतर अधिकार प्राप्त नहीं हैं । वास्तव में मकान मालिक ही न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो सकता था । अपीलार्थी को किरायेदार की हैसियत में अधिनियम के अंतर्गत वर्तमान कार्यवाहियों को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है । अत: अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई रिट याचिका को पोषणीय नहीं पाया गया और उसको खारिज कर दिया गया ।

4. हमने अपीलार्थियों/रिट याचियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री तपन सिंह को सुना । हमने बैंक (प्रत्यर्थी सं. 1) की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री गोपाल कुमार वर्मा और अन्य प्रत्यर्थी, जो मकान मालिक/बैंक से उधार लेने वाला है, की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री देवेश विश्नोई को भी सुना ।

5. अपीलार्थियों/रिट याचियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री तपन सिंह ने निवेदन किया कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका खारिज करके न्यायत: कार्य नहीं किया और अपीलार्थी मकान मालिक/प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध अधिनियम के अंतर्गत आरंभ की गई निष्कासन कार्यवाहियों के अंतर्गत बेदखल किए जाने योग्य नहीं है । उन्होंने इस संबंध में इस न्यायालय द्वारा 2015 की विशेष अपील सं. 31 में पारित तारीख 6 मई, 2015 के निर्णय का अवलंब लिया । उन्होंने **हर्षद गोवर्धन सोंदागर** बनाम **इंटरनेशनल एसेट रिकंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लेने का भी प्रयास किया । उन्होंने 1972 के उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराया और बेदखली नियंत्रण) अधिनियम की धारा 30 के अधीन जमा कराए गए किराये पर आधारित पट्टे का अवलंब लेते हुए दलीलें दीं और उस पट्टे का समर्थन किया और उन्होंने अपनी दलीलों के माध्यम से इस तथ्य का भी अवलंब लिया कि उनके नाम निर्धारण रजिस्टर में दर्ज हैं । उन्होंने यह निवेदन भी किया कि पट्टा वर्ष 1975 का है और पट्टा आरंभिकत: अपीलार्थियों के दादा के पक्ष में सृजित किया गया था और इसको समय-समय पर जारी रखा

[1] (2014) 6 एस. सी. सी. 1.

गया जिसके परिणामस्वरूप किरायेदारी भी जारी रही ।

6. मकान मालिक और बकायेदार/उधार लेने वाले की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री दकवेश विश्नोई ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थी सं. 2 ने इस संपत्ति को वर्ष 2014 में खरीदा था और इस को खरीदने के पश्चात् विधि के अंतर्गत कोई पट्टा सृजित नहीं किया था ।

7. इसके विपरीत प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री गोपाल के. वर्मा ने पट्टे को स्वीकार नहीं किया । उन्होंने **हर्षद गोवर्धन सोंदागर** (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के पैरा सं. 37.1 और 37.3, जो निम्नलिखित हैं, का भी अवलंब लिया :-

> "37.1. 2012 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 9426, 9170, 9163, 9253, 9164 और 9160, 2013 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 379, 1467, 1782 और 3575, 2012 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 4062, 63, 4053, 4068, 4119 और 4129, 2013 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 7835, 8365, 9217 और 10346, 2012 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 6587, 6639, 6523, 6622, 7731, 7747, 4618, 1666, 4066, 4111, 4123, 4115, 4118, 4127 और 7733, 2013 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 614, 3579-81, 4024, 4032, 4030, 4025, 4031, 3715, 3563, 5533-34, 2914, 2915 और 10502 से उद्भूत दांडिक अपीलों में अपीलार्थियों ने यह दावा किया है कि वे पट्टों, जिनको संपत्ति के बंधक रखे जाने के पूर्व जारी किया गया था, के अंतर्गत प्रतिभूत आस्तियों के कब्जे में हैं किंतु मुंबई के मुख्य मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट ने प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा अनेक प्रतिभूत लेनदारों को दिए जाने के संबंध में सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन आदेश पारित कर दिए हैं । मुंबई के मुख्य मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा पारित इन आदेशों को अपास्त कर दिया गया है और मामलों को मुख्य मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट को इस निर्णय और कोई अन्य विधि

जो सुसंगत हो, के अनुसार अपीलार्थियों और प्रतिभूत लेनदारों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात् नया आदेश पारित करने के लिए वापस भेज दिया गया है ।

37.3. 2012 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 4619, 6598, 6522, 7745, 7746 और 4120 से उद्भूत दांडिक अपीलों में, जब संविधान के अनुच्छेद 126 के अधीन विशेष इजाजत याचिकाएं फाइल की गई थीं, सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन प्रतिभूत लेनदारों द्वारा कोई आवेदन फाइल नहीं किया गया था । यदि इस दौरान ऐसा कोई आवेदन सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के अधीन फाइल किया गया है या भविष्य में फाइल किया जाएगा, तो मुख्य मेट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट जैसा भी मामला हो, इस निर्णय या कोई अन्य विधि, जो सुसंगत हो, के अनुसार अपीलार्थियों और प्रतिभूत लेनदारों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् उस आवेदन को निर्णीत करेगा ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया ।)

8. अत: प्रत्यर्थी सं. 1 के विद्वान् काउंसेल श्री गोपाल के. वर्मा ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थी बैंक अधिकथित प्रक्रिया और माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा अधिकथित विधि के विनिश्चयानुपात के अनुसार अधिनियम की धारा 14 के अधीन आदेश पारित किए बिना कब्जा नहीं ले सकता और उन्होंने आगे निवेदन किया कि बैंक अधिनियम की धारा 14 के अधीन जिला मजिस्ट्रेट की शरण में जाएगा और जिला मजिस्ट्रेट अपीलार्थियों को सुनने के उपरांत आदेश पारित कर सकता है । उन्होंने यह निवेदन भी किया कि जहां तक प्रथम प्रत्यर्थी का संबंध है, वह संविधान के अनुच्छेद 12 के अधीन प्राधिकारी नहीं है और इसलिए रिट याचिका घोषणीय नहीं है जहां तक 2015 की विशेष अपील सं. 31 में पारित निर्णय का संबंध है और जिसका अवलंब अपीलार्थी द्वारा अपने पक्ष के समर्थन में लिया गया है, हम उल्लेख करते हैं कि यह ऐसा मामला है जहां विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अनुतोष प्रदान कर दिया है और ऐसा प्रतीत होता है कि यह ऐसा मामला है जहां दुकान के किरायेदार, जिसके बारे में यह अभिकथित किया गया

है कि उसको अत्यधिक पहले किरायेदार के रूप में स्वीकार किया गया था और उसके और मकान मालिक के मध्य मुकदमेबाजी भी हुई थी, में विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अनुतोष प्रदान कर दिए थे । उस मामले में 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं. 13 की धारा 21(1)(क) के अधीन पक्षों के मध्य मुकदमेबाजी हुई थी जिसमें मकान मालिक और किरायेदार के मध्य संबद्ध की विद्यमानता पूरोभाव्य शर्त होती है और यह ऐसा मामला नहीं था जैसे मामले में हम वर्तमान में विचार कर रहे हैं और जिसमें प्रत्यर्थी सं. 2 मकान मालिक ने मकान मालिक और किरायेदार के संबंधों से ही इनकार कर दिया है और आगे यह कि मकान मालिक और किरायेदार के संबंध से और किराया प्राप्त किए जाने से इनकारी और किराये को न्यायालय में जमा कराए जाने के प्रयोजनार्थ अधिनियम की धारा 30 के अधीन कार्यवाही लंबित है ।

9. इस मामले में हम माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा जो अधिकथित किया गया है, को ध्यान में रखते हुए प्रत्यर्थी बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल द्वारा जिस अनुक्रम का पालन किए जाने का सुझाव दिया गया है, से इस मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए सहमत हैं । हम यह उल्लेख भी करते हैं कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने प्रत्यर्थियों को सूचना जारी किए जाने के लिए आदेशित किए बिना ही रिट याचिका खारिज कर दी थी । खंडन शपथपत्र फाइल करने का भी अवसर प्रदान नहीं किया गया था । नि:संदेह रूप से यह सत्य है कि प्रथम प्रत्यर्थी ने इस अपील में खंडन शपथपत्र फाइल किया है । हम समझते हैं कि अपीलार्थियों का हित भी तभी संरक्षित होगा जब हम प्रथम प्रत्यर्थी के निवेदनों को अभिलिखित करेंगे क्योंकि उसने अपीलार्थियों द्वारा पक्ष बनाए जाने और जिला मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 14 के अधीन आरंभ की गई कार्यवाहियों में सूचना जारी किए जाने पर अपनी दलीलें प्रस्तुत की थीं । तद्नुसार अपील का निस्तारण किया जाता है, जो इस प्रकार है :-

> "हम प्रथम प्रत्यर्थी/बैंक के इस निवेदन को अभिलिखित करते हैं कि बैंक संपत्ति का बलपूर्वक कब्जा नहीं लेगा और कब्जा तभी लेगा जब इसकी अनुज्ञा अधिनियम की धारा 14 के अधीन जिला

मजिस्ट्रेट द्वारा प्रदान की जाए । जिला मजिस्ट्रेट अपीलार्थियों को सूचना जारी करेगा और उनको किरायेदार के रूप में अपने पक्षकथन को साबित करने और अपनी दलीलें प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करेगा । हम यह स्पष्ट करते हैं कि यदि प्रथम प्रत्यर्थी जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होता है तो जिला मजिस्ट्रेट विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में की गई मताभिव्यक्ति से प्रभावित हुए बिना मामले पर विचार करेगा और माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **हर्षद गोवर्धन सोंदागर** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित विधि के प्रकाश में मामले पर विचार करेगा ।"

10. अपील मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

अवि.

(2019) 2 सि. नि. प. 321 **उत्तराखंड**

नरुली देवी और अन्य

बनाम

जीत राम उर्फ जैत राम और अन्य

(2019 की द्वितीय अपील सं. 38)

तारीख़ 28 मार्च, 2019

न्यायमूर्ति शरद कुमार शर्मा

उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 – धारा 44 – खतौनी और खसरा में प्रविष्टियां – उपधारणा – जहां खतौनी और खसरा में कोई प्रविष्टि की गई है और यदि उसे आक्षेपित नहीं किया गया है तब वहां यह उपधारित किया जाएगा कि ऐसी प्रविष्टियां सही हैं और उनका साक्ष्य के लिए अवलंब लिया जा सकता है ।

रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16) – धारा 49 – अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज – वर्जन – जहां किसी दस्तावेज का रजिस्ट्रीकरण कराना अनिवार्य हो और ऐसे दस्तावेज को रजिस्ट्रीकृत न कराया गया हो वहां ऐसे दस्तावेज के आधार पर किसी अंतरण को विधिमान्य अंतरण नहीं माना जा सकता ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 7, नियम 3 – हक़दारी की घोषणा के लिए वाद – अरजिस्ट्रीकृत विक्रय-विलेख द्वारा जंगम संपत्ति का अंतरण – अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज ऐसे व्यक्ति के जिसके हक़ में दस्तावेज किया गया है, कोई अधिकार या शक्ति निहित नहीं करता – जहां दावेदार संपत्ति की पहचान को साबित नहीं कर पाता वहां सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 3 का अननुपालन माना जाएगा – अत: ऐसे किसी मामले में वादी के हक़ में हक़दारी और कब्जे की घोषणा के लिए डिक्री पारित नहीं की जा सकती ।

मामले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि जो द्वितीय अपील के अभिलेख से दर्शित होती है, इस प्रकार है कि यह कहा गया है कि वादी सं. 1 के स्वर्गीय पति और वादी सं. 2 और 3 के पिता ने 10 बिस्वा भूमि प्रतिवादियों से क्रय की थी जिसमें स्वीकृतत: उसने अपने आवासीय मकान का निर्माण करवा लिया था । यह कहा गया है और यह अभिलेख से भी उपदर्शित होता है कि उक्त भूमि का क्रय बहुत पहले तारीख 25 जुलाई, 1977 को किया गया था और इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है और यह बात प्रतिवादियों द्वारा निचले न्यायालय के समक्ष मामले के अभिलेख में स्वीकार की गई है जिसमें उन्होंने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि वादीगण तारीख 25 जुलाई, 1977 को अपने हक में किए गए विक्रय के पश्चात् 10 बिस्वा भूमि पर काबिज हैं । अत: जहां तक 10 बिस्वा भूमि का संबंध है जिसके ऊपर वादी ने निर्माण करा लिया है, प्रतिवादियों को कोई अधिकार प्राप्त नहीं है अथवा उससे उनका कोई संबंध नहीं है और न ही उन्होंने इसके ऊपर किसी प्रकार का दावा किया है । तथ्यत: संविवाद संपत्ति के शेष भाग से संबंधित है जो

प्रश्नगत वाद में संविवाद की विषयवस्तु है और इस भूमि का क्षेत्रफल 1 बीघा है जिसे वादी के पति स्वर्गीय श्री गोविन्द राम के पूर्व उत्तराधिकारियों द्वारा बंधक पर लिया गया था और यह बंधक प्रतिवादियों को 800/- रुपए की अग्रिम धनराशि के संदाय पर किया गया था । इस बंधक द्वारा जो स्वीकृततः तारीख 25 अप्रैल, 1977 को वादियों के हक में सृजित हुआ था, अभिलेख पर के साक्ष्य अर्थात् दस्तावेज के अनुसार जंगम संपत्ति पर अधिकार सृजित हो गया था और निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों के अनुसार इसे रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17 के अधीन रजिस्ट्रीकृत कराया जाना आवश्यक था और यह उपदर्शित या साबित नहीं किया गया है कि इसे अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत कराया गया था और इसलिए इसके द्वारा कोई विधिमान्य हक अंतरित नहीं होता है । वादियों द्वारा फाइल की गई यह द्वितीय अपील है । यह स्वीकृत स्थिति है जो अभिवचनों और निष्कर्षों से जो दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित किए गए हैं और जो सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), रामनगर जिला नैनीताल द्वारा 2013 के मूल वाद सं. 20, श्रीमती नरूली देवी और अन्य बनाम जीत राम और अन्य वाले मामले में तारीख 19 दिसंबर, 2017 को दिए गए आक्षेपित निर्णय में उपदर्शित हैं, प्रकट होता है । उपर्युक्त निर्णय को वादियों (हमारे समक्ष के अपीलार्थियों) द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के अधीन पेश की गई नियमित सिविल अपील में भी आक्षेपित किया गया था । उक्त अपील 2018 की सिविल अपील सं. 8 के रूप में श्रीमती नरूली देवी और अन्य बनाम जीत राम और अन्य के शीर्षक से रजिस्ट्रीकृत की गई थी और जिसमें उपर्युक्त आक्षेपित निर्णय की तारीख 13 दिसंबर, 2018 के निर्णय द्वारा पुष्टि की गई है जिसे वर्तमान वादियों/अपीलार्थियों द्वारा इस द्वितीय अपील में चुनौती दी गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – तथ्यतः विधि के उपर्युक्त उपबंध के अनुसार जब एक बार राजस्व अभिलेखों में राजस्व प्रविष्टियां कर दी जाती हैं, जैसा कि वर्तमान मामले में कागज सं. 27ग अर्थात् खतौनी और कागज सं. 28ग, जो कि खसरा है और जो कब्जे का दस्तावेज है, द्वारा हुआ है चूंकि इन दोनों प्रविष्टियों को आक्षेपित नहीं किया गया है और न ही इन्हें अपास्त

किया गया है इसलिए भू-राजस्व अधिनियम की धारा 44 के अधीन उल्लिखित उपबंध के आधार पर यह उपधारणा की जा सकती है इन प्रविष्टियों को सही उपधारित किया जाएगा और यदि ऐसा है तब प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों के कब्जे का तथ्य साबित हो गया है । (पैरा 9)

स्वीकृतत: दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित एक जैसे निष्कर्षों के अनुसार ये दोनों दस्तावेज रजिस्ट्रीकरण अधिनियम में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसार रजिस्ट्रीकृत नहीं हैं और इसलिए रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 49 द्वारा यथा सृजित वर्जन प्रवर्तन में आ जाएगा और इसलिए इसे संपत्ति अंतरण अधिनियम के अधीन अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसरण में अधिकार के विधिमान्य अंतरण किए जाने के रूप में नहीं समझा जा सकता । यह भी उपबंधित है कि ऐसी हकदारी का कोई दस्तावेज जो जंगम संपत्ति के संबंध में हो और जो अधिकार या हकदारी प्रदत्त करता हो और जो अधिनियम की धारा 17 के अधीन रजिस्ट्रीकृत किया जाना आवश्यक हो, ऐसे व्यक्ति को जिसके हक में उक्त दस्तावेज निष्पादित किया जाना कहा गया है, कोई शक्ति या अधिकार प्रदत्त नहीं करेगा । हमारे समक्ष का मामला भी अधिनियम की धारा 49 के अधीन यथा उपबंधित अपवाद खंड जो इस अपवाद को उल्लिखित करता है कि कोई अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज भले ही उस पर विनिर्दिष्ट अनुपालन के किसी वाद में एक साक्ष्य के रूप में विचार किया जा सकता हो, के भीतर नहीं आता । अत: उस दस्तावेज के जिसका उनके द्वारा अवलंब लिया गया था, अनुसरण में प्रतिवादियों के हक में कोई अधिकार सृजित नहीं हुआ था । (पैरा 10 और 12)

इस संबंध में यथा अभिलिखित तथ्यों के एक जैसे निष्कर्षों पर और अपील न्यायालय द्वारा इस आशय के कि संपत्ति के संबंध में कब्जा साबित करने के लिए जिस संपत्ति के संबंध में वादियों ने तारीख 25 अप्रैल, 1977 के बंधक के अनुसरण में काबिज होने का दावा किया है और जिसके बारे में तारीख 14 जून, 1976 को 2 बीघा भूमि को तथाकथित रूप से क्रय करना कहा गया है, अभिलिखित निष्कर्ष पर विचार करने पर वादीगण संपत्ति की पहचान को और इसकी हकदारी तथा कब्जे को साबित करने में पूर्णतया विफल रहे हैं इसलिए सिविल

प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 3 के अधीन अन्तर्विष्ट उपबंधों का अननुपालन हुआ है । वादियों की हकदारी और कब्जे के संबंध में तथ्यों के एक जैसे निष्कर्षों को जो दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित किए गए हैं, दृष्टिगत करते हुए इस न्यायालय का यह मत है कि ऐसी कोई स्पष्ट गलती नहीं की गई है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा निष्कर्षों के संबंध में स्पष्ट गलती की गई है क्योंकि वादी स्थायी व्यादेश की मंजूरी के लिए 3 बीघा भूमि के संबंध में जो तारीख 25 अप्रैल, 1977 के बंधक और तारीख 14 जून, 1977 को किए गए विक्रय की विषय-वस्तु थी, अपनी अविवादित हकदारी को साबित करने में सफल नहीं हुए हैं । अत: कब्जे के संबंध में और इसके प्रभाव के संबंध में दी गई दलील खसरा में जो कब्जे का दस्तावेज है, की गई प्रविष्टियों के बारे में किए गए निर्वचन द्वारा वादियों के विरुद्ध एक जैसे विनिश्चय को दृष्टिगत करते हुए इस न्यायालय का यह मत है कि चूंकि द्वितीय अपील तथ्यों के एक जैसे निष्कर्षों द्वारा निपटाई गई है, जिसमें इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है इसलिए यह द्वितीय अपील विफल होती है और तद्नुसार खारिज की जाती है । (पैरा 13 और 14)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2019 की द्वितीय अपील सं. 38.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री सर्वेश अग्रवाल और भारत भूषण तिवारी

प्रत्यर्थियों की ओर से –

न्यायमूर्ति शरद कुमार शर्मा – वादियों द्वारा फाइल की गई यह द्वितीय अपील है । यह स्वीकृत स्थिति है जो अभिवचनों और निष्कर्षों से जो दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित किए गए हैं और जो सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), रामनगर जिला नैनीताल द्वारा 2013 के मूल वाद सं. 20, श्रीमती नरूली देवी और अन्य बनाम जीत राम और अन्य वाले मामले में तारीख 19 दिसंबर, 2017 को दिए गए आक्षेपित निर्णय में उपदर्शित हैं, प्रकट होता है । उपर्युक्त निर्णय को

वादियों (हमारे समक्ष के अपीलार्थियों) द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के अधीन पेश की गई नियमित सिविल अपील में भी आक्षेपित किया गया था । उक्त अपील 2018 की सिविल अपील सं. 8 के रूप में श्रीमती नरूली देवी और अन्य बनाम जीत राम और अन्य के शीर्षक से रजिस्ट्रीकृत की गई थी और जिसमें उपर्युक्त आक्षेपित निर्णय की तारीख 13 दिसंबर, 2018 के निर्णय द्वारा पुष्टि की गई है जिसे वर्तमान वादियों/अपीलार्थियों द्वारा इस द्वितीय अपील में चुनौती दी गई है ।

2. मामले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि जो द्वितीय अपील के अभिलेख से दर्शित होती है, इस प्रकार है कि यह कहा गया है कि वादी सं. 1 के स्वर्गीय पति और वादी सं. 2 और 3 के पिता ने 10 बिस्वा भूमि प्रतिवादियों से क्रय की थी जिसमें स्वीकृतत: उसने अपने आवासीय मकान का निर्माण करवा लिया था । यह कहा गया है और यह अभिलेख से भी उपदर्शित होता है कि उक्त भूमि का क्रय बहुत पहले तारीख 25 जुलाई, 1977 को किया गया था और इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है और यह बात प्रतिवादियों द्वारा निचले न्यायालय के समक्ष मामले के अभिलेख में स्वीकार की गई है जिसमें उन्होंने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि वादीगण तारीख 25 जुलाई, 1977 को अपने हक में किए गए विक्रय के पश्चात् 10 बिस्वा भूमि पर काबिज हैं । अत: जहां तक 10 बिस्वा भूमि का संबंध है जिसके ऊपर वादी ने निर्माण करा लिया है, प्रतिवादियों को कोई अधिकार प्राप्त नहीं है अथवा उससे उनका कोई संबंध नहीं है और न ही उन्होंने इसके ऊपर किसी प्रकार का दावा किया है ।

3. तथ्यत: संविवाद संपत्ति के शेष भाग से संबंधित है जो प्रश्नगत वाद में संविवाद की विषयवस्तु है और इस भूमि का क्षेत्रफल 1 बीघा है जिसे वादी के पति स्वर्गीय श्री गोविन्द राम के पूर्व उत्तराधिकारियों द्वारा बंधक पर लिया गया था और यह बंधक प्रतिवादियों को 800/- रुपए की अग्रिम धनराशि के संदाय पर किया गया था । इस बंधक द्वारा जो स्वीकृतत: तारीख 25 अप्रैल, 1977 को वादियों के हक में सृजित हुआ था, अभिलेख पर के साक्ष्य अर्थात् दस्तावेज के अनुसार जंगम संपत्ति पर अधिकार सृजित हो गया था और निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों के अनुसार इसे रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17 के अधीन रजिस्ट्रीकृत कराया जाना आवश्यक था और यह

उपदर्शित या साबित नहीं किया गया है कि इसे अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत कराया गया था और इसलिए इसके द्वारा कोई विधिमान्य हक अंतरित नहीं होता है ।

4. इसके अतिरिक्त दो बीघा क्षेत्र की भूमि का एक अन्य खंड भी है जिसके बारे में वादीगण ने यह कहा है कि इसे फकराम ने 3,500/- रुपए के संदाय पर तारीख 14 जून, 1976 को उनके हक में विक्रीत किया था । इस दो बीघा भूमि के क्रय करने की इस कहानी को दोनों निचले न्यायालयों द्वारा इस विधिक आधार पर स्वीकार नहीं किया गया कि उक्त दस्तावेज भी किसी जंगम संपत्ति के संबंध में कोई अधिकार सृजित नहीं करता क्योंकि यह रजिस्ट्रीकृत नहीं है और इसे विचार में नहीं लिया जा सकता और इसे वादीगण में निहित किसी हकदारी के सबूत के रूप में नहीं समझा जा सकता । वादी द्वारा इसके रजिस्ट्रीकरण को कभी भी साबित नहीं किया गया ।

5. वादीगण-अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि दोनों ही निर्णय इस कारण से कायम नहीं रखे जा सकते क्योंकि दोनों ही निचले न्यायालयों ने कब्जे के तथ्य पर विचार न करने में विधि की त्रुटि की है जिसके संबंध में वादीगण की ओर से यह दलील दी गई है कि कुल तीन बीघा भूमि का उपर्युक्त विवादित भाग उनके कब्जे में रहा है क्योंकि प्रतिवादीगण अपने सभी प्रयासों के बावजूद बंधक अभिलिखित कराने में विफल रहे हैं जिसके बारे में उन्होंने अपने लिखित कथन में अभिवचन किए हैं ।

6. जहां तक तारीख 25 अप्रैल, 1977 के बंधक विलेख को रजिस्ट्रीकृत न कराने और अभिकथित विक्रय के आधार पर वादियों को कब्जा देने का संबंध है, यह कहा गया है कि तारीख 14 जून, 1976 को वादी को कब्जा दे दिया गया था । प्रतिवादियों ने अपने पक्षकथन के समर्थन में कागज सं. 27-ग पेश किया था जो कि खतौनी की प्रति है और जिसके बारे में यह स्वीकार किया गया है कि यह एक विधिक रूप से मान्यता प्राप्त दस्तावेज का भाग है, जिससे यह उपदर्शित होता है कि संपत्ति पर प्रतिवादियों का अधिकार निहित हो गया था और द्वितीय कागज सं. 28ग जो कि कब्जे के दावे के संबंध में अपीलार्थियों के दलील के जवाब के लिए विचार किए जाने के लिए सुसंगत है, कब्जे के

दावे से संबंधित है और इसके अतिरिक्त कागज सं. 28ग स्वीकृतत: ग्राम गौजानी, तहसील रामनगर, जिला नैनीताल से संबंधित खसरा है जो विवादित संपत्ति अर्थात् 1 बीघा भूमि से संबंधित है जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है और जो तारीख 25 अप्रैल, 1977 के बंधक और तारीख 14 जून, 1976 की विषयवस्तु है ।

7. खसरा कागज सं. 28ग में की गई प्रविष्टियों के तथ्य को विवादित नहीं किया गया है और न ही वादियों द्वारा निचले न्यायालय के समक्ष इसका विरोध किया गया था तथा न ही उन्होंने सक्षम न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों के किसी प्रक्रम पर दस्तावेज की विधिमान्यता को अथवा प्रतिवादियों के कब्जे की प्रविष्टियों को प्रश्नगत किया है । परिणामत: विद्वान् विचारण न्यायालय ने हकदारी और कब्जे से संबंधित प्रश्न का अर्थात् विवाद्यक सं. 1 का विनिश्चय करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि अभिवचनों में किए गए प्रकथनों और वादियों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य अर्थात् तारीख 25 अप्रैल, 1977 के बंधक से संबंधित कागज सं. 8ग/5 से कागज सं. 8ग/7 अभिलेख पर पेश करने को दृष्टिगत करते हुए और तारीख 14 जून, 1976 को भूमि के अभिकथित विक्रय से संबंधित दस्तावेज कागज सं. 8ग/8 और कागज सं. 8ग/10 पर विचार किया जाना चाहिए ।

8. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील पर उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 44 के अधीन उल्लिखित उपबंधों के प्रकाश में विचार किया जाना चाहिए । उक्त अधिनियम की धारा 44 इस प्रकार है :–

> *"44. **प्रविष्टियों के संबंध में उपधारणा ; और राजस्व न्यायालयों पर आबद्धकर विनिश्चय** – धारा 33 की उपधारा (3) के अधीन वार्षिक रजिस्टर में की गई सभी प्रविष्टियां सही उपधारित की जाएंगी जब तक कि प्रतिकूल साबित न किया जाए ; और धारा 40 की उपधारा (3)

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है –

> "44. **Presumption as to entries; and decisions binding on Revenue Courts** - All entries in the annual register made under sub-sections (3) of Sections 33 shall be presumed to be true until the contrary is proved; and subject to the provisions of sub-section (3) of Sections 40,

के उपबंधों के अध्यधीन धारा 40, 41 और 42 के अधीन सभी विनिश्चय विवाद की विषयवस्तु के संबंध में सभी राजस्व न्यायालयों पर आबद्धकर होंगे ; किन्तु ऐसी प्रविष्टि या विनिश्चय किसी व्यक्ति के दावा करने के अधिकार को और सिविल न्यायालय में भूमि में किसी हित को साबित करने के दावे को प्रभावित नहीं करेगा जिसे धारा 32 के खंड (क) से (घ) द्वारा विहित रजिस्टरों में अभिलिखित किया जाना आवश्यक है ।"

9. तथ्यत: विधि के उपर्युक्त उपबंध के अनुसार जब एक बार राजस्व अभिलेखों में राजस्व प्रविष्टियां कर दी जाती हैं, जैसा कि वर्तमान मामले में कागज सं. 27ग अर्थात् खतौनी और कागज सं. 28ग, जो कि खसरा है और जो कब्जे का दस्तावेज है, द्वारा हुआ है चूंकि इन दोनों प्रविष्टियों को आक्षेपित नहीं किया गया है और न ही इन्हें अपास्त किया गया है इसलिए भू-राजस्व अधिनियम की धारा 44 के अधीन उल्लिखित उपबंध के आधार पर यह उपधारणा की जा सकती है इन प्रविष्टियों को सही उपधारित किया जाएगा और यदि ऐसा है तब प्रतिवादी-प्रत्यर्थियों के कब्जे का तथ्य साबित हो गया है ।

10. स्वीकृतत: दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित एक जैसे निष्कर्षों के अनुसार ये दोनों दस्तावेज रजिस्ट्रीकरण अधिनियम में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसार रजिस्ट्रीकृत नहीं हैं और इसलिए रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 49 द्वारा यथा सृजित वर्जन – प्रवर्तन में आ जाएगा और इसलिए इसे संपत्ति अंतरण अधिनियम के अधीन अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसरण में अधिकार के विधिमान्य अंतरण किए जाने के रूप में नहीं समझा जा सकता ।

11. वादी-अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा उन निष्कर्षों के संबंध में जो दोनों निचले न्यायालय द्वारा रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908

---

all decisions under Sections 40, 41 and 42 shall be binding on all Revenue Courts in respect of the subject-matter of the dispute; but no such entry or decision shall affect the right of any person to claim and establish in the Civil Courts any interest in land which requires to be recorded in the registers prescribed by clauses (a) to (d) of Sections 32. "

की धारा 49 के प्रभाव के संबंध में अभिलिखित किए गए हैं, दी गई दलीलों का उत्तर देने के लिए अधिनियम की धारा 49 को निर्दिष्ट करना आवश्यक होगा जो इस प्रकार है :-

> "49. **जिन दस्तावेजों का रजिस्ट्रीकरण अपेक्षित है उनके अरजिस्ट्रीकरण का परिणाम** - कोई भी दस्तावेज जो धारा 17 द्वारा या संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) के किसी भी उपबंध द्वारा रजिस्ट्रीकृत किए जाने के लिए अपेक्षित है जब तक कि उसका रजिस्ट्रीकरण न हो गया हो, -
>
> (क) उसमें समाविष्ट किसी भी स्थावर संपत्ति पर प्रभाव नहीं डालेगी ;
>
> (ख) दत्तकग्रहण की कोई भी शक्ति प्रदत्त न करेगी ; अथवा
>
> (ग) ऐसी सम्पत्ति पर प्रभाव डालने वाले या ऐसी शक्ति को प्रदत्त करने वाले किसी भी संव्यवहार के साक्ष्य के रूप में ली जाएगी ।"

12. यह भी उपबंधित है कि ऐसी हकदारी का कोई दस्तावेज जो जंगम संपत्ति के संबंध में हो और जो अधिकार या हकदारी प्रदत्त करता हो और जो अधिनियम की धारा 17 के अधीन रजिस्ट्रीकृत किया जाना आवश्यक हो, ऐसे व्यक्ति को जिसके हक में उक्त दस्तावेज निष्पादित किया जाना कहा गया है, कोई शक्ति या अधिकार प्रदत्त नहीं करेगा । हमारे समक्ष का मामला भी अधिनियम की धारा 49 के अधीन यथा उपबंधित अपवाद खंड जो इस अपवाद को उल्लिखित करता है कि कोई अरजिस्ट्रीकृत दस्तावेज भले ही उस पर विनिर्दिष्ट अनुपालन के किसी वाद में एक साक्ष्य के रूप में विचार किया जा सकता हो, के भीतर नहीं आता । अत: उस दस्तावेज के जिसका उनके द्वारा अवलंब लिया गया था, अनुसरण में प्रतिवादियों के हक में कोई अधिकार सृजित नहीं हुआ था ।

13. इस संबंध में यथा अभिलिखित तथ्यों के एक जैसे निष्कर्षों पर और अपील न्यायालय द्वारा इस आशय के कि संपत्ति के संबंध में

कब्जा साबित करने के लिए जिस संपत्ति के संबंध में वादियों ने तारीख 25 अप्रैल, 1977 के बंधक के अनुसरण में काबिज होने का दावा किया है और जिसके बारे में तारीख 14 जून, 1976 को 2 बीघा भूमि को तथाकथित रूप से क्रय करना कहा गया है, अभिलिखित निष्कर्ष पर विचार करने पर वादीगण संपत्ति की पहचान को और इसकी हकदारी तथा कब्जे को साबित करने में पूर्णतया विफल रहे हैं इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 3 के अधीन अन्तर्विष्ट उपबंधों का अननुपालन हुआ है ।

14. वादियों की हकदारी और कब्जे के संबंध में तथ्यों के एक जैसे निष्कर्षों को जो दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित किए गए हैं, दृष्टिगत करते हुए इस न्यायालय का यह मत है कि ऐसी कोई स्पष्ट गलती नहीं की गई है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा निष्कर्षों के संबंध में स्पष्ट गलती की गई है क्योंकि वादी स्थायी व्यादेश की मंजूरी के लिए 3 बीघा भूमि के संबंध में जो तारीख 25 अप्रैल, 1977 के बंधक और तारीख 14 जून, 1977 को किए गए विक्रय की विषयवस्तु थी, अपनी अविवादित हकदारी को साबित करने में सफल नहीं हुए हैं । अत: कब्जे के संबंध में और इसके प्रभाव के संबंध में दी गई दलील खसरा में जो कब्जे का दस्तावेज है, की गई प्रविष्टियों के बारे में किए गए निर्वचन द्वारा वादियों के विरुद्ध एक जैसे विनिश्चय को दृष्टिगत करते हुए इस न्यायालय का यह मत है कि चूंकि द्वितीय अपील तथ्यों के एक जैसे निष्कर्षों द्वारा निपटाई गई है, जिसमें इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है इसलिए यह द्वितीय अपील विफल होती है और तद्नुसार खारिज की जाती है ।

15. तथापि, खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

(2019) 2 सि. नि. प. 332 कलकत्ता

एमार्स माइनिंग एंड कंस्ट्रक्सन प्राइवेट लिमिटेड

बनाम

मंजूनाथ हेब्बर

(2014 का सिविल वाद सं. 124)

तारीख 13 मार्च, 2019

न्यायमूर्ति शेखर बी. सर्राफ

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 7, नियम 2 और आदेश 9, नियम 6 – धन की वसूली के लिए वाद – प्रतिवादी द्वारा वाद में प्रतिरक्षा न किया जाना और लिखित कथन फाइल न किया जाना – वादी द्वारा वाद साबित किया जाना – वादी दावाधीन रकम की वसूली के लिए एकपक्षीय डिक्री प्राप्त करने का हकदार है ।

संक्षेप में वाद के तथ्य यह हैं कि वादी कंपनी का यह दावा है कि उसने करार के निबंधनों के अनुसार आर.टी.जी.एस. और निधि अंतरण के माध्यम से विविध तारीखों पर 15,66,50,000/- रुपए का अग्रिम संदाय प्रतिवादी को किया । प्रतिवादी ने यह संदाय प्राप्त होने के पश्चात् जनवरी, 2012 के पहले 5,84,10,000/- रुपए की कीमत के विशुद्ध लौह अयस्क की आपूर्ति की । तत्पश्चात् प्रतिवादी ने 8,82,40,000/- रुपए के मूल्य के विशुद्ध लौह अयस्क की आपूर्ति नहीं की । इस कारणवश वादी कंपनी और प्रतिवादी के मध्य यह सहमति बनी की अधिशेष रकम वापस की जाएगी चूंकि प्रतिवादी उक्त रकम के विशुद्ध लौह अयस्क की आपूर्ति करने में असमर्थ था । वादी द्वारा अनेक अवसरों पर प्रतिवादी से संपर्क किया गया और अधिशेष रकम की मांग की गई । किंतु प्रतिवादी ने अनेक आश्वासनों के बावजूद वादी को अधिशेष रकम का संदाय नहीं किया, अत: वादी को अधिशेष रकम की वसूली के लिए प्रस्तुत वाद फाइल करना पड़ा । न्यायालय द्वारा वाद डिक्री करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से यह बात साबित हो जाती है कि प्रतिवादी को वादी कंपनी द्वारा अग्रिम संदाय किए जाने के

पश्चात् 92,000 मैट्रिक टन विशुद्ध लौह अयस्क की आपूर्ति करनी थी । वादी कंपनी ने प्रतिवादी के साथ किए गए करार के अनुसार उसको 15,66,50,000/- रुपए की राशि का संदाय कर दिया था किंतु वादी कंपनी ने मात्र 5,84,10,000/- रुपए की कीमत के विशुद्ध लौह अयस्क प्राप्त किए, अत: 8,82,40,000/- रुपए की कीमत के विशुद्ध लौह अयस्क की आपूर्ति शेष रही । वादी कंपनी ने अधिशेष रकम की मांग करते हुए विभिन्न अवसरों पर प्रतिवादी से संपर्क करने का प्रयास किया किंतु प्रतिवादी ने वादी कंपनी को उक्त रकम का पुनर्संदाय नहीं किया । प्रतिवादी ने तारीख 13 नवंबर, 2011 के ई-मेल के माध्यम से देय राशि को स्वीकार किया और यह वादा किया कि वह वादी कंपनी को जनवरी, 2012 तक 4,20,00,000/- रुपए की रकम का पुनर्संदाय कर देगा । जब प्रतिवादी वादी कंपनी को देय रकम के संदाय में विभिन्न अवसरों पर विफल हुआ तो वादी कंपनी ने तारीख 31 मार्च, 2014 को अधिशेष दावे के संबंध में अपने अधिवक्ता के माध्यम से इस न्यायालय में सिविल वाद फाइल किया । यहां पर इस बात का उल्लेख किया जाता है कि वाद परिसीमा अवधि के भीतर है । इस बात का भी उल्लेख किया जाता है कि प्रतिवादी उपस्थित हो चुका है किंतु उसने कोई लिखित कथन फाइल नहीं किया । इन बातों को ध्यान में रखते हुए यह माना जाता है कि यह वाद बिना प्रतिरक्षा वाला वाद है । वादी कंपनी ने 12,00,06,400/- रुपए की वसूली के लिए प्रार्थना की है जिसमें से 8,82,40,000/- रुपए की रकम मूल रकम है और 3,17,66,400/- रुपए की रकम ब्याज की रकम है (जिसकी संगणना जनवरी, 2012 से दिसंबर, 2013 की अवधि के लिए 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से किया गया है) । मेरे विचार में वादी कंपनी तारीख 13 नवंबर, 2011 से संदाय की तारीख तक 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज सहित 8,82,40,000/- रुपए की मूल राशि के लिए प्रतिवादी के विरुद्ध एकपक्षीय डिक्री प्राप्त करने के अधिकारी हैं । लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जा रहा । इस न्यायालय के विभाग को निर्देशित किया जाता है कि डिक्री शीघ्रातिशीघ्र तैयार करें । (पैरा 9, 10 और 11)

आरंभिक (सिविल) अधिकारिता : 2014 का सिविल वाद सं. 124.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 7, नियम 2 के अधीन धन वसूली के लिए सिविल वाद ।

वादी की ओर से सर्वश्री निर्मल्य दास गुप्ता और आर. एल. मित्रा

प्रतिवादी की ओर से अनुपस्थित

आदेश

वादी 1956 के कंपनी अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत आमेलित कंपनी है जिसका रजिस्ट्रीकृत कार्यालय 6, ल्योन्स रेंज, छठी मंजिल, कोलकाता - 700001 में स्थिति है । वादी कंपनी अन्य कारोबारों के साथ-साथ खनिजों, निष्कर्षण, आयात, निर्यात और खनिजों अयस्कों (कच्ची धातुओं) और उत्पादों के संव्यवहारों में संलग्न है । प्रतिवादी मैसर्स श्याम इंटर प्राइजेज के नाम से एकल कर्ताधर्ता के रूप में कारबार चला रहा है जिसका कार्यालय 473, 8वां तल, देवी मैदान के निकट, के. बी. रोड, एल्लापुर - 581359, कर्नाटक और 104, प्रथम तल, क्रॉस रोड, एवेन्यू अर्लेम रोड, फैट्रोडा, मरगांव - 400602, गोवा में स्थित है । प्रतिवादी अन्य बातों के साथ-साथ लौह अयस्क के खनन के कारबार में भी संलग्न है ।

2. वादी द्वारा यह अभिकथित किया गया है कि प्रतिवादी ने वादी कंपनी से तारीख 22 अक्तूबर, 2010 को संपर्क किया और विशुद्ध लौह अयस्क की आपूर्ति का प्रस्ताव दिया । वादी कंपनी और प्रतिवादी के मध्य हुई बातचीत के मतावलंबन में यह निर्णय लिया गया कि वादी कंपनी कुल 92,000 मैट्रिक टन लौह अयस्क की आपूर्ति का क्रय 1,575/- रुपए से 2,800/- रुपए प्रति मैट्रिक टन के मध्य की फेरफार वाली दरों पर तारीख 9 नवंबर, 2010 से तारीख 5 फरवरी, 2011 के मध्य करेगी । उक्त करार को वादी के रजिस्ट्रीकृत कार्यालय में अंतिम रूप दिया गया था ।

3. वादी कंपनी ने यह दावा किया है कि उसने करार के निबंधनों के अनुसार आर.टी.जी.एस. और निधि अंतरण के माध्यम से विविध तारीखों पर 15,66,50,000/- रुपए का अग्रिम संदाय किया जो प्रतिवादी

द्वारा सम्यक् रूप से प्राप्त किया जा चुका है । प्रतिवादी ने यह संदाय प्राप्त होने के पश्चात् जनवरी, 2012 के पहले 5,84,10,000/- रुपए की कीमत के विशुद्ध लौह अयस्क की आपूर्ति कर दी थी । तत्पश्चात् प्रतिवादी ने 8,82,40,000/- रुपए के मूल्य के विशुद्ध लौह अयस्क की आपूर्ति नहीं की । इस कारणवश वादी कंपनी और प्रतिवादी के मध्य यह सहमति बनी की अधिशेष रकम वापस की जाएगी चूंकि प्रतिवादी उक्त रकम के विशुद्ध लौह अयस्क की आपूर्ति करने में असमर्थ था ।

4. वादी कंपनी ने दावा किया है कि उनको देय अधिशेष रकम को निर्मुक्त किए जाने के लिए अनेक अवसरों पर उन्होंने प्रतिवादी से अनुरोध किया । इसके अतिरिक्त वादी कंपनी ने यह दावा भी किया है कि प्रतिवादी ने वादी कंपनी के सद्भावपूर्ण दावे को स्वीकार कर लिया और उसने तारीख 13 नवंबर, 2011 को भेजी गई ई-मेल द्वारा वादी कंपनी को यह प्रस्ताव दिया कि जनवरी, 2012 तक 4,20,00,000/- रुपए के संदाय द्वारा दावे का निपटारा कर देगा । प्रतिवादी ने वादी कंपनी द्वारा की गई मांग के अनुसरण में तारीख 1 सितंबर, 2011 को वादी कंपनी को 4,20,00,000/- रुपए के चैक सौंप दिए जिनका तारीख 24 फरवरी, 2012 को प्रस्तुत किए जाने पर अंतत: 'निधि अपर्याप्त/इंतजाम से अधिक का चैक' के कारणवश अनादरण हो गया । तत्पश्चात् वादी कंपनी ने अपने पक्ष में आहृत उक्त चैक के अनादरण के कारणवश 1881 के परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपने अधिवक्ता के माध्यम से तारीख 12 मार्च, 2012 का एक नोटिस भेजा ।

5. तत्पश्चात्, प्रतिवादी कंपनी ने तारीख 5 अक्तूबर, 2012 के ई-मेल के माध्यम से 1,00,000/- रुपए की रकम के समायोजन के पश्चात् वादी कंपनी को देय 5,50,00,000/- रुपए की रकम का संदाय करने की इच्छा व्यक्त की । इस प्रकार, वादी कंपनी द्वारा प्रतिवादी को वादी कंपनी को देय अधिशेष रकम के संदाय के लिए अनेक अवसर प्रदान किए गए, जिनमें विफल रहने पर वादी कंपनी ने प्रतिवादी के विरुद्ध, 12,00,06,0000/- की रकम की जिसमें वादी कंपनी को देय मूल अधिशेष रकम और जनवरी, 2012 से दिसंबर, 2013 के मध्य संगणित 18 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज सम्मिलित है, डिक्री की प्रार्थना करते

हुए यह वाद संस्थित कराया है । वादी कंपनी ने उपरोक्त रकम की वसूली की तारीख तक वादकालीन ब्याज दिलाए जाने की भी प्रार्थना की है ।

6. तत्पश्चात्, तारीख 31 अगस्त, 2018 को प्रतिवादी की ओर से अधिवक्ता हरेराम सिंह उपस्थित हुए । तथापि, इस न्यायालय के उप-रजिस्ट्रार ने तारीख 12 फरवरी, 2019 को इस बात को प्रमाणित कर दिया था कि प्रतिवादी द्वारा इस तारीख तक कोई लिखित कथन फाइल नहीं किया गया है ।

7. इस न्यायालय द्वारा विचारणार्थ एकमात्र बिंदू यह है कि क्या वादी इस वाद में याचित डिक्री को प्राप्त करने का हकदार है या नहीं ?

8. कंपनी के लेखा प्रबंधक/मुख्य अधिकारी श्री पार्थ प्रतिम एच. का परीक्षण वादी के साक्षी के रूप में कराया गया । तारीख 19 मार्च, 2018 को संपन्न बैठक में पारित स्पष्ट प्रस्ताव से यह प्रतीत होता है कि श्री पार्थ प्रतिम एच. को इस मामले के संबंध में वादी कंपनी के लिए और उनकी ओर से इस न्यायालय के समक्ष शपथपूर्वक कथन करने के लिए सम्यक् रूप से प्राधिकृत किया गया है । इस स्पष्ट प्रस्ताव को फाइल किया गया है और प्रदर्श-ए के रूप में चिह्नित किया गया है । प्रदर्श-बी (सामूहिक) के परिशीलन से यह ज्ञात होता है कि वादी कंपनी ने विशुद्ध लौह अयस्क की आपूर्ति के लिए प्रतिवादी को आदेश दिया था । इस साक्षी ने आगे शपथपूर्वक कथन किया है कि प्रतिवादी ने इस आदेश की भागत: आपूर्ति कर दी थी और 53,000 मैट्रिक टन विशुद्ध लौह अयस्क से अधिक की आपूर्ति नहीं की गई । शपथकर्ता ने आगे कथन शपथपूर्वक किया है कि तारीख 10 दिसंबर, 2010 के क्रय आदेश को संशोधित किया गया था जिसको प्रदर्श-सी के रूप में चिह्नित किया गया है । साक्षियों के परीक्षण के दौरान शपथकर्ता ने अभिकथित किया कि प्रतिवादी ने वादी कंपनी को तारीख 13 नवंबर, 2011 को भेजे गए ई-मेल के माध्यम से सूचित किया था कि प्रतिवादी जनवरी, 2012 तक 4,20,00,000/- रुपए की रकम का संदाय करेगा । ई-मेल की उक्त प्रति को प्रदर्श-डी के रूप में चिह्नित किया गया है । तत्पश्चात् शपथकर्ता ने अभिकथित किया कि 4,20,00,000/- रुपए की तारीख 1 सितंबर, 2011 की चैक, जो वादी कंपनी के नाम जारी की गई थी, अपर्याप्त निधि के

कारण अनादरित हो गई थी । मूल चैक को प्रदर्श-ई के रूप में चिह्नित किया गया है । चैक के अनादरण का साक्ष्य देने वाला बैंक ज्ञापन प्रदर्श-एफ के रूप में चिह्नित किया गया है ।

9. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से यह बात साबित हो गई है कि प्रतिवादी को वादी कंपनी को अग्रिम संदाय किए जाने के पश्चात् 92,000 मैट्रिक टन विशुद्ध लौह अयस्क की आपूर्ति करनी थी । वादी कंपनी ने प्रतिवादी के साथ किए गए करार के बदले में उसको 15,66,50,000/- रुपए की राशि का संदाय कर दिया था किंतु वादी कंपनी ने मात्र 5,84,10,000/- रुपए की कीमत के विशुद्ध लौह अयस्क प्राप्त किए, अत: 8,82,40,000/- रुपए की कीमत के विशुद्ध लौह अयस्क की आपूर्ति शेष रही । वादी कंपनी ने अधिशेष रकम की मांग करते हुए विभिन्न अवसरों पर प्रतिवादी से संपर्क करने का प्रयास किया किंतु प्रतिवादी ने वादी कंपनी को उक्त रकम का पुनर्संदाय नहीं किया ।

10. प्रतिवादी ने तारीख 13 नवंबर, 2011 के ई-मेल के माध्यम से देय राशि को स्वीकार किया और वादा किया कि वह वादी कंपनी को जनवरी, 2012 तक 4,20,00,000/- रुपए की रकम का पुनर्संदाय कर देगा । जब प्रतिवादी वादी कंपनी को देय रकम के संदाय में विभिन्न अवसरों पर विफल हुआ तो प्रतिवादी कंपनी ने तारीख 31 मार्च, 2014 को अधिशेष दावे के संबंध में अपने अधिवक्ता के माध्यम से इस न्यायालय में सिविल वाद फाइल किया । यहां पर इस बात का उल्लेख किया जाता है कि वाद परिसीमा की अवधि के भीतर है । इस बात का भी उल्लेख किया जाता है कि प्रतिवादी उपस्थित हो चुका है किंतु उसने कोई लिखित कथन फाइल नहीं किया । इन बातों को ध्यान में रखते हुए यह माना जाता है कि यह वाद बिना प्रतिरक्षा वाला वाद है ।

11. वादी कंपनी ने 12,00,06,400/- रुपए की वसूली के लिए प्रार्थना की है जिसमें से 8,82,40,000/- रुपए मूल रकम है और 3,17,66,400/- रुपए ब्याज की रकम है (जिसकी संगणना जनवरी, 2012 से दिसंबर, 2013 की अवधि के लिए 18 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से किया गया है) । मेरे विचार में वादी कंपनी तारीख 13 नवंबर, 2011

से संदाय की तारीख तक 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज सहित 8,82,40,000/- रुपए की मूल राशि के लिए प्रतिवादी के विरुद्ध एकपक्षीय डिक्री प्राप्त करने की अधिकारी हैं । लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जा रहा । इस न्यायालय के विभाग को निर्देशित किया जाता है कि डिक्री शीघ्रातिशीघ्र तैयार करे ।

12. तत्पश्चात् वादी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि मूल चैक और उक्त चैक का बैंक ज्ञापन वापस लौटा दिया जाए चूंकि वह अन्य कार्यवाही में अपेक्षित है । उनकी इस प्रार्थना को मंजूर किया जाता है । इस न्यायालय के विभाग को निर्देशित किया जाता है कि उपरोक्त दस्तावेजों की फोटो कापी प्राप्त करने के पश्चात् यह दस्तावेज को वापस कर दे ।

वाद डिक्री किया गया ।

अवि.

(2019) 2 सि. नि. प. 338 **केरल**

उमेश

बनाम

भारत संघ और एक अन्य

[2019 की रिट याचिका (सिविल) सं. 20181]

तारीख 30 जुलाई, 2019

न्यायमूर्ति देवन रामचन्द्रन

पासपोर्ट अधिनियम, 1967 (1967 का 15) – धारा 6(2)(च) और 8 – पासपोर्ट के नवीकरण हेतु आवेदन – पासपोर्ट धारक के विरुद्ध दांडिक मामले का लंबन – पूर्व में न्यायालय के आदेश पर एक वर्ष के लिए पासपोर्ट नवीकृत किया जाना – अवधि के विस्तार के लिए आवेदन – पासपोर्ट प्राधिकारी द्वारा न्यायालय से नए सिरे से अनुमति लिए जाने का निर्देश – विधिमान्यता – जहां पासपोर्ट धारक के पास

न्यायालय के समक्ष कोई दांडिक मामला लंबित हो वहां न्यायालय द्वारा एक वर्ष के लिए नवीकरण का आदेश करने पर विस्तार के लिए पुन: अनुमति लिए जाने पर ही पासपोर्ट नवीकृत किया जा सकता है ।

याची के अनुसार उसने पूर्व में इस न्यायालय में समावेदन किया था जिसमें निर्णय प्रदर्श पी-4 पारित किया गया था, जिसमें पासपोर्ट अधिकारी को उसके दावे पर विचार करने के लिए निदेश दिया गया था तथापि, उक्त प्राधिकारी द्वारा मात्र यह उल्लेख करते हुए और उसके अनुरोध को खारिज करते हुए प्रदर्श पी-7 जारी किया गया है कि वह न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग, अटिंगल के न्यायालय के समक्ष 2016 के अपराध सं. 1151 में एक अभियुक्त है, जैसा कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रदर्श पी-2 से स्पष्ट होता है । याची ने यह प्रकथन किया है कि पासपोर्ट अधिनियम, 1967 (जिसे आगे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 8 को दृष्टिगत करते हुए पासपोर्ट प्राधिकारी द्वारा पासपोर्ट की अवधि के विस्तार के लिए किसी न्यायालय के आदेश की आवश्यकता नहीं है और यह बात निर्णय प्रदर्श पी-4 से स्पष्ट है और इस न्यायालय के आदेशों के अधीन एक वर्ष की अवधि के लिए पासपोर्ट जारी किया गया था और परिणामत: पासपोर्ट प्राधिकारी को इन निदेशों का इस अर्थ के लिए निर्वचन करना चाहिए कि पासपोर्ट के विस्तार को भी मंजूरी दी गई है । उसने यह दलील दी है कि मामले को दृष्टिगत करते हुए किसी भी दशा में किसी मामले का लंबन पूर्णतया विधिमान्य पासपोर्ट जारी करने में पासपोर्ट प्राधिकारी के लिए विधिक वर्जन के रूप में नहीं माना जा सकता है, जहां पासपोर्ट अधिनियम की धारा 8 के अनुसार नवीकरण के लिए पेश किया जाता है । याची ने इस न्यायालय में इस अनुतोष के लिए अनुरोध करते हुए दूसरी बार समावेदन किया है कि उसके वर्तमान पासपोर्ट की अवधि संबंधित पासपोर्ट प्राधिकारी अर्थात् द्वितीय प्रत्यर्थी-पासपोर्ट अधिकारी द्वारा बढ़ाई जाए । रिट याचिका में तद्नुसार आदेश पारित करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय द्वारा भारत के सहायक महा-सालिसिटर को सुनने के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि दलील में यह विवक्षित है कि पासपोर्ट प्राधिकारी को अधिनियम की धारा 8 के अधीन लिखित में कारणों का उल्लेख करके पासपोर्ट का नवीकरण/विस्तार करने से इनकार

करने का प्राधिकार प्राप्त है और इसी शक्ति का अवलंब लेते हुए आदेश प्रदर्श पी-7 जारी किया गया है । अत: महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या प्रदर्श पी-7 में उल्लिखित कारण विधि में अनुकरणीय है । तथापि, यह कहा जा सकता है कि चूंकि याची ने यह स्वीकार किया है कि वह एक अपराध में अभियुक्त है इसलिए मुझे यह प्रतीत नहीं होता कि पासपोर्ट अधिकारी ने प्रदर्श पी-7 में जो उल्लेख किया है वह विधि के प्रतिकूल है क्योंकि उसने आदेश में यह कहा है कि याची को विदेश यात्रा करने हेतु अनुज्ञात करने के लिए सक्षम न्यायालय से आदेश प्राप्त करने चाहिए । अविवादित रूप से क्योंकि याची एक अभियुक्त है इसलिए उसे उस न्यायालय से जिसके समक्ष मामला लंबित है न कि इस न्यायालय से, ऐसे आदेश प्राप्त करने चाहिए । उपर्युक्त परिस्थितियों में, न्यायालय इस रिट याचिका में यह आदेश करते हुए याची को यह स्वतंत्रता प्रदान करता है कि वह उस संबंधित न्यायालय के समक्ष समावेदन करे जिसके समक्ष उसके विरुद्ध मामला इस समय लंबित है और वह विदेश जाने के लिए अनुमति की ईप्सा करते हुए समुचित आवेदन फाइल करे और यदि ऐसा आवेदन इस निर्णय की प्राप्ति की तारीख से एक सप्ताह की अवधि के भीतर फाइल किया जाता है तो ऐसा न्यायालय उस पर विचार करेगा और यथासंभव शीघ्र तथापि, उस तारीख से एक सप्ताह से अनधिक की अवधि के भीतर जिस पर ऐसा आवेदन फाइल किया जाता है, आदेश पारित करेगा । निचला न्यायालय ऐसा करते हुए याची के मामले पर समानुभूतिक विचार करेगा और यदि मांगे गए अनुतोष को मंजूर करने के विरुद्ध कोई अन्य आबद्धकर कारण मौजूद न हो तो ऐसी अनुमति प्रदान करेगा, विशेष रूप से इस तथ्य की अवेक्षा करते हुए कि इस न्यायालय द्वारा निर्णय प्रदर्श पी-4 द्वारा पूर्व में एक वर्ष के लिए पासपोर्ट जारी करने के लिए अनुमति प्रदान की गई थी । यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि यदि याची के हक में दंड न्यायालय द्वारा विदेश यात्रा करने की अनुमति प्रदान की जाती है तो वह इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह उक्त आदेश को द्वितीय प्रत्यर्थी-पासपोर्ट अधिकारी के समक्ष पेश करे और इस प्रकार पेश किए जाने पर प्रत्यर्थी-पासपोर्ट अधिकारी आगे किसी विलंब के बिना पासपोर्ट को समुचित अवधि के लिए नवीकृत करेगा । याची के विद्वान् काउंसेल श्री टी. एम.

अब्दुल लतीफ ने यह कहा है कि उनके मुवक्किल द्वारा एक मास की अवधि के भीतर अपने नियोजन (नौकरी) को बचाने के लिए विदेश यात्रा करना आवश्यक है । (पैरा 5, 6 और 7)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2019 की रिट याचिका (सिविल) सं. 20181.

संविधान, 1950 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री टी. एम. अब्दुल लतीफ

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री पी. विजय कुमार

न्यायमूर्ति देवन रामचन्द्रन – याची ने इस न्यायालय में इस अनुतोष के लिए अनुरोध करते हुए दूसरी बार समावेदन किया है कि उसके वर्तमान पासपोर्ट की अवधि संबंधित पासपोर्ट प्राधिकारी अर्थात् द्वितीय प्रत्यर्थी-पासपोर्ट अधिकारी द्वारा बढ़ाई जाए ।

2. याची के अनुसार उसने पूर्व में इस न्यायालय में समावेदन किया था जिसमें निर्णय प्रदर्श पी-4 पारित किया गया था, जिसमें पासपोर्ट अधिकारी को उसके दावे पर विचार करने के लिए निदेश दिया गया था तथापि, उक्त प्राधिकारी द्वारा मात्र यह उल्लेख करते हुए और उसके अनुरोध को खारिज करते हुए प्रदर्श पी-7 जारी किया गया है कि वह न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम वर्ग, अटिंगल के न्यायालय के समक्ष 2016 के अपराध सं. 1151 में एक अभियुक्त है, जैसा कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट प्रदर्श पी-2 से स्पष्ट होता है । याची ने यह प्रकथन किया है कि पासपोर्ट अधिनियम, 1967 (जिसे आगे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 8 को दृष्टिगत करते हुए पासपोर्ट प्राधिकारी द्वारा पासपोर्ट की अवधि के विस्तार के लिए किसी न्यायालय के आदेश की आवश्यकता नहीं है और यह बात निर्णय प्रदर्श पी-4 से स्पष्ट है और इस न्यायालय के आदेशों के अधीन एक वर्ष की अवधि के लिए पासपोर्ट जारी किया गया था और परिणामत: पासपोर्ट प्राधिकारी को इन निदेशों का इस अर्थ के लिए निर्वचन करना चाहिए कि पासपोर्ट के विस्तार को भी मंजूरी दी गई है । उसने यह दलील दी है कि मामले को दृष्टिगत करते हुए किसी भी दशा में किसी मामले का लंबन पूर्णतया

विधिमान्य पासपोर्ट जारी करने में पासपोर्ट प्राधिकारी के लिए विधिक वर्जन के रूप में नहीं माना जा सकता है, जहां पासपोर्ट अधिनियम की धारा 8 के अनुसार नवीकरण के लिए पेश किया जाता है ।

3. प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित भारत के सहायक महा-सालिसिटर ने यह दलील दी है कि अभिलेख पर एक विवरण फाइल किया गया है जिसमें निम्नलिखित प्रकथन किया गया है :-

> "2. विनम्रतापूर्वक यह निवेदन किया जाता है कि इस कार्यालय द्वारा याची के हक में तारीख 6 जुलाई, 2019 को पासपोर्ट सं. एस.-1909077 जारी किया गया था जो तारीख 9 अप्रैल, 2013 के उसके पूर्वतर पासपोर्ट सं. के-9773513 की निरंतरता में था । यह पासपोर्ट त्रिवेन्द्रम में जारी किया गया था और यह एक वर्ष की अवधि के लिए जारी किया गया था जैसा कि माननीय केरल उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 20 जून, 2018 की रिट याचिका (सिविल) सं. 13649 में निदेश दिया गया था और अब वह (याची) कोलम्बलम पुलिस थाने के 2016 के अपराध सं. 1151 में एक अभियुक्त है । याची द्वारा किए गए कथनानुसार यह स्पष्ट है कि दांडिक मामला निचले न्यायालय के समक्ष अभी भी लंबित है । पासपोर्ट की विधिमान्यता को आगे बढ़ाने के लिए माननीय न्यायालय से दूसरे आदेश की आवश्यकता है ।
>
> 3. विनम्रतापूर्वक यह भी निवेदन किया जाता है कि पासपोर्ट अधिनियम, 1967 के अन्य उपबंधों के अध्यधीन पासपोर्ट अधिनियम की धारा 6(2)(4) के अनुसार पासपोर्ट प्राधिकारी किसी पासपोर्ट या यात्रा दस्तावेज को जारी करने से तब इनकार कर सकेगा जब आवेदक द्वारा किए जाने के लिए अभिकथित किसी अपराध के संबंध में कोई कार्यवाही भारत के किसी दंड न्यायालय के समक्ष लंबित हो । पासपोर्ट प्राधिकारी से यह अपेक्षित है कि वह पासपोर्ट अधिनियम की धारा 6(2)(4) के उपबंधों के प्रवर्तन से पासपोर्ट आवेदन से छूट दे सकेगा, जहां भारत से बाहर जाने के लिए किसी न्यायालय द्वारा आवेदक को अनुज्ञात करने वाले किसी आदेश की प्रमाणित प्रति आवेदक द्वारा पेश की जाए । ऐसे मामलों में केवल

एक वर्ष की अवधि की विधिमान्यता वाला पासपोर्ट जारी किया जा सकता है जब तक कि न्यायालय के आदेश में कोई संक्षिप्त/पूर्ण विधिमान्य पासपोर्ट के संबंध में विनिर्दिष्ट रूप से उल्लेख न हो ।

4. विनम्रतापूर्वक यह भी निवेदन किया जाता है कि उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए याची रिट याचिका में अनुरोध किए गए किसी अनुतोष के लिए विधित: हकदार नहीं है । चूंकि उपर्युक्त रिट याचिका में कोई बल नहीं है इसलिए यह खर्चों सहित खारिज किए जाने योग्य है ।"

4. सहायक महा-सालिसिटर ने यह दलील दी है कि जैसा कि निर्णय प्रदर्श पी-4 से स्पष्ट है कि पूर्वतर पासपोर्ट याची को केवल इस कारण से जारी किया गया था कि इस न्यायालय ने पासपोर्ट प्राधिकारी को एक वर्ष की अवधि के लिए विस्तारित करने के लिए निदेश दिया था । उसने यह दलील दी है कि अब उक्त अवधि समाप्त हो चुकी है और इसलिए याची को इस न्यायालय से अथवा निचले न्यायालय से आदेश प्राप्त करना चाहिए जिसके द्वारा उसे विदेश यात्रा के लिए अनुज्ञात किया जाए और जिसके आधार पर पासपोर्ट प्राधिकारी उसका पासपोर्ट नवीकृत करने के लिए समर्थ हो सके । सहायक महा-सालिसिटर ने यह भी दलील दी है कि भारत सरकार के विदेश मंत्रालय द्वारा अगस्त, 1993 की अधिसूचना सं. जी. एस. आर.-570(ई) के अनुसार ऐसी परिस्थितियों में कोई पासपोर्ट न्यायालय के नए आदेश के आधार पर नवीकृत किया जा सकता है तथापि, आदेश में विदेश यात्रा के लिए विधिमान्यता अवधि या विनिर्दिष्ट अवधि का उल्लेख होना चाहिए ।

5. मेरे द्वारा भारत के सहायक महा-सालिसिटर को सुनने के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि दलील में यह विवक्षित है कि पासपोर्ट प्राधिकारी को अधिनियम की धारा 8 के अधीन लिखित में कारणों का उल्लेख करके पासपोर्ट का नवीकरण/विस्तार करने से इनकार करने का प्राधिकार प्राप्त है और इसी शक्ति का अवलंब लेते हुए आदेश प्रदर्श पी-7 जारी किया गया है । अत: महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या प्रदर्श पी-7 में उल्लिखित कारण विधि में अनुकरणीय है । तथापि, यह कहा जा सकता है कि चूंकि याची ने यह स्वीकार किया है कि वह एक अपराध में अभियुक्त है इसलिए मुझे

यह प्रतीत नहीं होता कि पासपोर्ट अधिकारी ने प्रदर्श पी-7 में जो उल्लेख किया है वह विधि के प्रतिकूल है क्योंकि उसने आदेश में यह कहा है कि याची को विदेश यात्रा करने हेतु अनुज्ञात करने के लिए सक्षम न्यायालय से आदेश प्राप्त करने चाहिए । अविवादित रूप से क्योंकि याची एक अभियुक्त है इसलिए उसे उस न्यायालय से जिसके समक्ष मामला लंबित है न कि इस न्यायालय से, ऐसे आदेश प्राप्त करने चाहिए ।

6. उपर्युक्त परिस्थितियों में, मैं इस रिट याचिका में यह आदेश करते हुए याची को यह स्वतंत्रता प्रदान करता हूं कि वह उस संबंधित न्यायालय के समक्ष समावेदन करे जिसके समक्ष उसके विरुद्ध मामला इस समय लंबित है और वह विदेश जाने के लिए अनुमति की ईप्सा करते हुए समुचित आवेदन फाइल करे और यदि ऐसा आवेदन इस निर्णय की प्राप्ति की तारीख से एक सप्ताह की अवधि के भीतर फाइल किया जाता है तो ऐसा न्यायालय उस पर विचार करेगा और यथासंभव शीघ्र तथापि, उस तारीख से एक सप्ताह से अनधिक की अवधि के भीतर जिस पर ऐसा आवेदन फाइल किया जाता है, आदेश पारित करेगा । निचला न्यायालय ऐसा करते हुए याची के मामले पर समानुभूतिक विचार करेगा और यदि मांगे गए अनुतोष को मंजूर करने के विरुद्ध कोई अन्य आबद्धकर कारण मौजूद न हो तो ऐसी अनुमति प्रदान करेगा, विशेष रूप से इस तथ्य की अवेक्षा करते हुए कि इस न्यायालय द्वारा निर्णय प्रदर्श पी-4 द्वारा पूर्व में एक वर्ष के लिए पासपोर्ट जारी करने के लिए अनुमति प्रदान की गई थी ।

7. यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि यदि याची के हक में दंड न्यायालय द्वारा विदेश यात्रा करने की अनुमति प्रदान की जाती है तो वह इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह उक्त आदेश को द्वितीय प्रत्यर्थी-पासपोर्ट अधिकारी के समक्ष पेश करे और इस प्रकार पेश किए जाने पर प्रत्यर्थी-पासपोर्ट अधिकारी आगे किसी विलंब के बिना पासपोर्ट को समुचित अवधि के लिए नवीकृत करेगा । याची के विद्वान् काउंसेल श्री टी. एम. अब्दुल लतीफ ने यह कहा है कि उनके मुवक्किल द्वारा एक मास की अवधि के भीतर अपने नियोजन (नौकरी) को बचाने के लिए विदेश यात्रा करना आवश्यक है ।

8. अत: इस रिट याचिका में तद्नुसार आदेश पारित किया जाता है ।

रिट याचिका में तद्नुसार आदेश पारित किया गया ।

मह.

(2019) 2 सि. नि. प. 345 झारखंड

अरविन्द कुमार उर्फ अरविन्द कुमार सोनी

बनाम

श्रीमती मधुलिका नंदकुलियार

[2011 की रिट याचिका (सिविल) सं. 3920]

तारीख 5 जुलाई, 2018

न्यायमूर्ति चंद्रशेखर

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 8, नियम 9 – वादपत्र के लिखित कथन के उत्तर में फाइल किए गए लिखित कथन का प्रत्युत्तर फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया आवेदन – वादी द्वारा इस आधार पर प्रत्युत्तर फाइल किया जाना कि प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में अनेक नए तथ्यों का प्रकटीकरण किया है जिनका स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है – न्यायालय वाद के विचारण के लिए नई प्रक्रिया, जिसे संहिता के अंतर्गत विहित नहीं किया गया है, उपबंधित नहीं कर सकता – आवेदन अस्वीकृत किए जाने योग्य है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि याची 2010 के हक वाद सं. 126 में वादी है जो तारीख 19 मई, 2011 के आदेश, जिसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 8, नियम 9 के अधीन फाइल किए गए उसके आवेदन, जिसके द्वारा उसने प्रत्युत्तर फाइल किए जाने की इजाजत मांगी थी, को अस्वीकार कर दिया गया है, द्वारा व्यथित है ।

याची ने प्रस्तुत याचिका में यह पक्षकथन किया है कि वह विचारण न्यायालय के समक्ष प्रत्युत्तर के माध्यम से कुछ ऐसे तथ्यों का स्पष्टीकरण देना चाहता था जिनका अभिवाक् प्रत्यर्थी-प्रतिवादी द्वारा अपने लिखित कथन में किया गया था और उसे प्रत्युत्तर फाइल करने का अधिकार है । याची द्वारा एक अन्य अभिवाक् किया गया है कि प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में कतिपय तथ्यों को छिपाया है और असत्य कथन किए हैं जिस कारणवश वादपत्र का प्रत्युत्तर फाइल किए जाने की आवश्यकता उत्पन्न हुई । याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में अनेक नए तथ्यों, जिनका अभिवचन वादी द्वारा नहीं किया गया था, का प्रकटीकरण किया है । वास्तव में यह वादी ही है और न कि प्रतिवादी, जिसने तात्विक तथ्यों को छुपाया है । इस आधार पर कि प्रतिवादी ने तथ्यों को छुपाया है और असत्य तथ्यों का अभिवचन किया है, मेरे विचार में वादपत्र में संशोधन भी अनुज्ञेय नहीं है और निश्चित रूप से आदेशार्थ नियम 9 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग नहीं किया जा सकता । संहिता के अधीन विहित प्रक्रिया को न्यायालय द्वारा परिवर्तित, संशोधित या उपांतरित नहीं किया जा सकता और न्यायालय किसी वाद के विचारण हेतु एक बिल्कुल ही नई प्रक्रिया, जिसे संहिता में विहित नहीं किया गया है, उपबंधित नहीं कर सकते । वाद में वादपत्र और लिखित कथन के सिवाय कोई अन्य अभिवचन नहीं होता । वास्तव में संहिता प्रत्युत्तर फाइल किए जाने के बारे में चर्चा नहीं करती । उपरोक्त तथ्यों और निष्कर्षों के प्रकाश में तारीख 19 मई, 2011 के आक्षेपित आदेश में कोई शैथिल्य नहीं पाया जाता, अत: रिट याचिका खारिज की जाती । (पैरा 9 और 10)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की रिट याचिका (सिविल) सं. 3920.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री दिलीप कुमार प्रसाद

प्रत्यर्थी की ओर से श्री कल्याण बनर्जी

आदेश

याची 2010 के हक (अधिकार) वाद सं. 126 में वादी है जो तारीख 19 मई, 2011 के आदेश, जिसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 8, नियम 9 के अधीन फाइल किए गए आवेदन, जिसके द्वारा उसने प्रत्युत्तर फाइल किए जाने की अनुज्ञा चाही थी, को अस्वीकार कर दिया गया, द्वारा व्यथित है ।

2. याची का पक्षकथन यह है कि वह कुछ ऐसे तथ्यों का स्पष्टीकरण देना चाहता है जिनका अभिवाक् प्रतिवादी द्वारा अपने लिखित कथन में किया गया है और वह प्रत्युत्तर फाइल करने का हकदार है । याची द्वारा एक अन्य अभिवाक् किया गया है, जो यह है कि प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में कतिपय तथ्यों को छुपाया है और असत्य कथन किए हैं जिस कारणवश वादपत्र का प्रत्युत्तर फाइल किए जाने की आवश्यकता उत्पन्न हुई ।

3. 2010 का हक वाद सं. 126 संविदा के विनिर्दिष्ट निर्वहन के लिए डिक्री अभिप्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ संस्थित कराया गया था । वादी का यह अभिवचन है कि प्रतिवादी ने उससे दो लाख रुपए का ऋण मित्रता के आधार पर प्राप्त किया था जो उसे तारीख 10 फरवरी, 2005 के चार मांग-पत्रों द्वारा दिया गया था, जो सभी रांची स्थित पंजाब और सिंध बैंक पर आहरित थे । प्रतिवादी इस रकम के पुनर्संदाय के प्रयोजनार्थ अपनी भू-संपत्ति, जिसकी माप लगभग चार कट्ठा थी और जिस पर मकान भी स्थित था, को सात लाख रुपए में बेचने के लिए सहमत हो गया था । तत्पश्चात्, पक्षों द्वारा तारीख 15 मई, 2009 को एक विक्रय करार निष्पादित किया गया । वादी ने आगे अभिवाक् किया है कि उसने तारीख 15 मई, 2009 को अर्थात् जब विक्रय करार निष्पादित किया गया, नकद में चार लाख रुपए का संदाय कर दिया था और इस प्रकार उसने प्रतिवादी को छह लाख रुपए का संदाय कर दिया है । तथापि, जब प्रतिवादी ने 10 माह की अवधि के भीतर, जैसाकि विक्रय करार में अनुध्यात किया गया है, विक्रय विलेख निष्पादित नहीं किया तो उसने प्रतिवादी को तारीख 23 फरवरी, 2010 को विधिक

नोटिस भेजा । प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में अभिवाक् किया है कि उसने जिला रांची में स्थित ग्राम कादरू में चार कट्ठा भूमि खरीदी है किंतु उस भूमि पर कोई निर्माण नहीं किया गया है और वास्तव में उसके पास रांची में कोई भी मकान या क्वार्टर नहीं है । वह अपने विवाह के पश्चात् अपने पति डा. प्रशांत नंदकुलियार के गया स्थित घर में रह रही है और विवाह के पहले उसका नाम मधुलिका नारायण था । प्रतिवादी ने इन तथ्यों के आधार पर विधिक नोटिस की स्वयं पर तामीली स्वयं और उस पते पर, जिसका प्रकटीकरण वादी द्वारा वादपत्र में किया गया है, पर होने को विवादित किया । उसने दावा किया है कि दैनिक समाचार-पत्र में नोटिस के प्रकाशन के पश्चात् उसको वादी द्वारा वाद संस्थित किए जाने के बारे में जानकारी हुई । उसके द्वारा आगे यह अभिवाक् भी किया गया है कि वह और उसकी ननद डॉली नंदकुलियार, जो भी जिला रांची स्थित ग्राम बाड़ाघरा में स्थित प्लाट सं. 1939-ए. में से 13 डेसिमल भूमि की स्वामिनी है और जिसका विवाह उसके पति के भाई के साथ हुआ है, ने चार कट्ठा भूमि के विक्रय के प्रयोजनार्थ दो पृथक्-पृथक् करार मो. शमीम नामक व्यक्ति के पक्ष में निष्पादित किए थे, जो अंतत: विक्रय धन का संदाय नहीं कर सका और परिणामस्वरूप उसके द्वारा निष्पादित किया गया तारीख 2 अगस्त, 2003 का पूर्वोक्त विक्रय करार और उसकी ननद डॉली नंदकुलियार द्वारा निष्पादित विक्रय विलेख निरस्त हो गए और तत्पश्चात् उन दोनों ने जिला गया के मोहल्ला शमीर तकिया के निवासी चितरंजन प्रसाद वर्मा के पक्ष में एक रजिस्ट्रीकृत मुखतारनामा निष्पादित कर दिया । उसको तारीख 15 अप्रैल, 2009 को अधिवक्ता का नोटिस प्राप्त होने के पश्चात् यह ज्ञात हुआ कि उपरोक्त मो. शमीम ने उससे संबंधित चार कट्ठा भूमि के संबंध में तारीख 13 जनवरी, 2005 को एक विक्रय करार श्रीमती लता देवी, जो वादी की पत्नी है, के पक्ष में निष्पादित कर दिया है । वादी द्वारा किए गए अभिकथित संदाय से प्रतिवादी द्वारा इनकार किया गया है और इस संदाय को विवादित किया गया है ।

4. उपरोक्त तथ्यों के प्रकाश में प्रतिवादी द्वारा तारीख 4 जनवरी, 2011 का प्रत्युत्तर फाइल किया गया, जिसके साथ सिविल प्रक्रिया संहिता

के आदेश 8 और नियम 9 के अधीन एक आवेदन भी संलग्न था ।

5. इस आवेदन को विचारण न्यायाधीश द्वारा इस अधार पर अस्वीकृत कर दिया गया है कि यह वाद कारण को परिवर्तित कर देगा ।

6. सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 8, नियम 9 निम्नलिखित है :–

> "9. **पश्चात्वर्ती अभिवचन** – प्रतिवादी के लिखित कथन के पश्चात् कोई भी अभिवचन, जो मुजरा के या प्रतिवादी दावे के विरुद्ध प्रतिरक्षा से भिन्न हो, न्यायालय की इजाजत से ही और ऐसे निबंधनों पर, जो न्यायालय ठीक समझे, उपस्थित किया जाएगा अन्यथा नहीं । किंतु न्यायालय पक्षकारों में किसी से भी लिखित कथन या अतिरिक्त कथन किसी भी समय अपेक्षित कर सकेगा और उसे उपस्थित करने के लिए 30 दिन से अनधिक का समय नियत कर सकेगा ।"

7. सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 6 साधारण अभिवचनों से संबंधित है । यह आदेश अभिवचनों के स्वरूपों, विवरणों और आवश्यकता पड़ने पर दिए जाने वाले अन्य या उत्तम प्रकृति के कथनों, अभिवचनों का सत्यापन, अभिवचनों को काट दिए जाने, अभिवचनों का संशोधन इत्यादि के बारे में उपबंधित करता है । सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 6, नियम 1 स्पष्ट करता है कि वादपत्र और लिखित कथन 'वाद में अभिवचनों' को गठित करेंगे । आदेश 7 वादपत्र और आदेश 8 लिखित कथन के बारे में उपबंधित करते हैं । इस संदर्भ में आदेश 8 का नियम 9 उपबंधित करता है कि प्रतिवादी के लिखित कथन के पश्चात् कोई भी अभिवचन, जो मुजरा के या प्रतिदावे के विरुद्ध प्रतिरक्षा से भिन्न हो, न्यायालय की इजाजत से और ऐसे निबंधनों पर, जो न्यायालय ठीक समझे, उपस्थित किया जाएगा अन्यथा नहीं । किंतु न्यायालय पक्षकारों में किसी से भी लिखित कथन या अतिरिक्त लिखित कथन किसी भी समय अपेक्षित कर सकेगा और उसे उपस्थित करने के लिए 30 दिन से अनधिक का समय नियत कर सकेगा । तथापि, इस निर्बंधन के विरुद्ध अपवाद भी इसी नियम में सृजित किए गए हैं । यह नियम उपबंधित करता है कि जब प्रतिवादी द्वारा अपने लिखित कथन

में कोई मुजरा या प्रतिदावा से संबंधित दावा किया जाता है, तो वादी को लिखित कथन या अतिरिक्त लिखित कथन फाइल करने की इजाजत प्रदान की जा सकती है, यद्यपि ऐसा न्यायालय की अनुज्ञा के बिना नहीं किया जा सकेगा और उन शर्तों के आधार पर किया जा सकेगा, जैसाकि न्यायालय उचित समझे । आदेश 8 का नियम 6 उपबंधित करता है कि जब प्रतिवादी वादी के दावे के विरुद्ध मुजरा का दावा करता है, तो वह वाद की प्रथम तारीख पर मुजरा के लिए ईप्सित ऋण के विवरणों को समाविष्ट करते हुए लिखित कथन प्रस्तुत कर सकता है, किंतु प्रथम सुनवाई के पश्चात् नहीं, जब तक कि न्यायालय द्वारा ऐसा किए जाने की अनुज्ञा प्रदान न कर दी जाए । नियम 6 का उप-नियम (2) उपबंधित करता है कि लिखित कथन का प्रभाव प्रतीपवाद में के वादपत्र के प्रभाव के समान ही होगा जिससे न्यायालय मूल दावे और मुजरा दोनों के संबंध में अंतिम निर्णय सुनाने के लिए समर्थ हो जाए, किंतु डिक्रीत रकम पर प्लीडर को डिक्री के अधीन देय खर्चों के बारे में उसके धारणाधिकार पर इससे प्रभाव नहीं पड़ेगा । उप-नियम (3) उपबंधित करता है कि प्रतिवादी द्वारा लिखित कथन से संबंधित नियम मुजरा के दावे के उत्तर में फाइल किए गए लिखित कथन पर भी लागू होंगे । आदेश 8, नियम 6-क प्रतिवादी द्वारा प्रतिदावे से संबंधित है । यह उपबंधित करता है कि वाद में प्रतिवादी नियम 6 के अधीन मुजरा के अभिवचन के अपने अधिकार के अतिरिक्त वादी के दावे के विरुद्ध प्रतिवादे के रूप में किसी ऐसे अधिकार या दावे को, जो वादी के विरुद्ध प्रतिवादी को वाद फाइल किए जाने के पूर्व या पश्चात् किंतु प्रतिवादी द्वारा अपनी प्रतिरक्षा परिदत्त किए जाने के पूर्व या अपनी प्रतिरक्षा परिदत्त किए जाने के लिए परिसीमित समय का अवसान हो जाने के पूर्व, जो किसी वाद हेतुक के बारे में प्रोद्भूत हुआ हो, उठा सकेगा चाहे ऐसा प्रतिदावा नुकसानी के दावे के रूप में हो या न हो । इसी प्रकार की प्रक्रिया तब भी लागू होती है जब प्रतिवादी द्वारा प्रतिदावा किया जाता है, जैसेकि मुजरा के दावे के मामले में होता है ।

8. आदेश 8 के नियम 6 और नियम 6-क के अधीन विहित पूर्वोक्त प्रक्रिया के संदर्भ में, जब नियम 9 में उद्भूत होने वाली

अभिव्यक्ति 'केवल तब जब न्यायालय द्वारा उन शर्तों के अध्यधीन रहते हुए, जैसाकि न्यायालय उचित समझे, इजाजत प्रदान की जाए', का परीक्षण किया जाता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि पश्चात्वर्ती अभिवचन, जैसाकि नियम 9 के अधीन परिकल्पित किया गया है, उन मामलों में लिखित कथन या अतिरिक्त लिखित कथन फाइल किए जाने तक सीमित रहना चाहिए, जिनमें प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में मुजरा के लिए दावा किया है या प्रतिदावा फाइल किया है । पश्चात्वर्ती अभिवचन फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ नियम 9 के अधीन न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग किसी पक्ष को तथ्यों के स्पष्टीकरण या विस्तृतीकरण के बहाने नए तथ्यों को संयोजित किए जाने की अनुज्ञा प्रदान किए जाने के लिए नहीं किया जा सकता । कोई ऐसा तथ्य जिसका कोई पक्ष प्रकथन अपने अभिवचनों में करने में विफल रहा है तो उसे आदेश 6, नियम 17 के अधीन उपबंधित परिसीमाओं के अध्यधीन रहते हुए संशोधन के द्वारा सम्मिलित करने की अनुज्ञा प्रदान की जा सकती है परंतु यह तब जबकि वह तथ्य वाद में अंतर्वलित वास्तविक विवाद के निराकरण के लिए आवश्यक हो, किंतु ऐसा प्रत्युत्तर फाइल किए जाने के द्वारा नहीं किया जा सकता । आदेश 6 के नियम 17 के अधीन किसी तथ्य के स्पष्टीकरण या विस्तृतीकरण के लिए ऐसे अभिवचनों, जिन्हें वादपत्र में पहले ही सम्मिलित किया जा चुका है, में संशोधन की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती, तथापि, वादी को आदेश 8, नियम 9 के अधीन शक्तियों के प्रयोग की अनुज्ञा किसी तथ्य के स्पष्टीकरण या विस्तृतीकरण के प्रयोजनार्थ प्रत्युत्तर फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती ।

9. प्रतिवादी ने अपने लिखित कथन में अनेक नए तथ्यों, जिनका अभिवचन वादी द्वारा नहीं किया गया था, का प्रकटीकरण किया है । वास्तव में यह वादी ही है और न कि प्रतिवादी, जिसने तात्विक तथ्यों को छुपाया है । इस आधार पर कि प्रतिवादी ने तथ्यों को छुपाया है और असत्य तथ्यों का अभिवचन किया है, मेरे विचार में वादपत्र में संशोधन भी अनुज्ञेय नहीं है और निश्चित रूप से आदेशार्थ नियम 9 के अधीन

प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग नहीं किया जा सकता । संहिता के अधीन विहित प्रक्रिया को न्यायालय द्वारा परिवर्तित, संशोधित या उपांतरित नहीं किया जा सकता और न्यायालय किसी वाद के विचारण हेतु एक बिल्कुल ही नई प्रक्रिया, जिसे संहिता में विहित नहीं किया गया है, उपबंधित नहीं कर सकते । वाद में वादपत्र और लिखित कथन के सिवाय कोई अन्य अभिवचन नहीं होता । वास्तव में संहिता प्रत्युत्तर फाइल किए जाने के बारे में चर्चा नहीं करती ।

10. उपरोक्त तथ्यों और निष्कर्षों के प्रकाश में तारीख 19 मई, 2011 के आक्षेपित आदेश में कोई शैथिल्य नहीं पाया जाता, अत: रिट याचिका खारिज की जाती ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

अवि.

(2019) 2 सि. नि. प. 352 **पटना**

सरस्वती देवी (श्रीमती) और अन्य

बनाम

मिथिलेश कुमार सिंह और अन्य

(2011 की सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 167)

तारीख़ 4 अप्रैल, 2019

न्यायमूर्ति बीरेन्द्र कुमार

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39) – धारा 2 और 3 – प्रोबेट कार्यवाहियां – वसीयतकर्ता के हक़ को साबित करने की आवश्यकता – प्रोबेट न्यायालय वसीयतकर्ता की हकदारी की जांच नहीं कर सकता – प्रोबेट न्यायालय केवल यह जांच कर सकता है कि विल सही रूप से निष्पादित की गई है या नहीं और क्या वसीयतकर्ता द्वारा विल स्वेच्छा से की गई है ।

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 – धारा 276 – विल का प्रोबेट – विल साक्षियों द्वारा सम्यक्त: प्ररूपित और हस्ताक्षरित की जानी – प्रतिवादियों द्वारा विल के प्रोबेट का विरोध – अनुप्रमाणन साक्षियों की मृत्यु हो जाने के कारण विल को विल के लेखक द्वारा साबित किया जाना – वसीयतकर्ता के हस्ताक्षरों को अन्य विक्रय विलेख पर किए गए हस्ताक्षरों से मेल खाना – वसीयतकर्ता द्वारा समझौता आवेदन में अपने अधिकार के प्रयोग से इनकार करना – मात्र समझौता आवेदन में अधिकार के प्रयोग से इनकार के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि वसीयतकर्ता ने संपत्ति में अपने अधिकार पूर्णतया त्यक्त कर दिए थे – परिस्थितियों को देखते हुए विल के लेखक के साक्ष्य के आधार पर विल का सम्यक् निष्पादन माना जा सकता है – अत: विल के प्रोबेट को मंजूर करना उचित है ।

आक्षेप के आधारों पर विचार करने के पूर्व विल की पृष्ठभूमि और पक्षकारों के बीच नातेदारी की प्रकृति का उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है । किशन सिंह नामक व्यक्ति के दो पुत्र अर्थात् हरदेव सिंह और भुनेश्वर सिंह थे । उपर्युक्त हरदेव सिंह के पांच पुत्र अर्थात् राम लक्ष्मण, राम बिहारी सिंह, जंग बहादुर, दीप नारायण सिंह और रामपत सिंह थे । श्रीमती मोतीराजो कौर अर्थात् विल की निष्पादक रामपत सिंह की विधवा थी और प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 अर्थात् मिथिलेश कुमार सिंह और अवधेश कुमार सिंह जिनके हक में विल निष्पादित की गई थी, उपर्युक्त दीप नारायण सिंह के पुत्र हैं । श्रीमती मोतीराजो कौर के सह-अंशधारकों ने विल की सत्यता को आक्षेपित करते हुए प्रोबेट मामले का विरोध किया और विल के निष्पादन को इस आधार पर आक्षेपित किया गया कि श्रीमती मोतीराजो कौर को उक्त विल निष्पादित करने का कोई अधिकार नहीं था । यह कहा गया है कि मोतीराजो कौर द्वारा संपत्ति के अधिकार 1972 के विभाजन वाद सं. 237 में फाइल किए गए तारीख 16 मार्च, 1978 के समझौता विलेख (प्रदर्श-ए) द्वारा त्यक्त कर दिए गए थे जिसके द्वारा श्रीमती मोतीराजो कौर ने केवल भरणपोषण का अधिकार स्वीकार किया था और उसके पति की संपत्ति सह-अंशधारकों में बंट गई थी । यह अपील 1986 के प्रोबेट मामला सं. 18

में विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, चतुर्थ, छपरा द्वारा तारीख 31 जनवरी, 2011 को पारित उस निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा विद्वान् निचले न्यायालय ने तारीख 16 जून, 1985 की विल के संबंध में जिसके बारे में यह कहा गया है कि वह श्रीमती मोतीराजो कौर पत्नी रामपत सिंह द्वारा निष्पादित की गई थी, प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के हक में प्रोबेट मंजूर किया है । अपीलार्थियों ने प्रोबेट न्यायालय के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर वर्तमान सिविल प्रकीर्ण अपील फाइल की । प्रकीर्ण अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस बारे में विधि सुस्थापित है कि किसी प्रोबेट न्यायालय से यह अपेक्षित नहीं है कि वह वसीयतकर्ता की हकदारी पर विचार करे । एकमात्र अपेक्षा यह सुनिश्चित करना है कि क्या पेश की गई विल वसीयतकर्ता की सही विल है और क्या ऐसी विल सम्यक्त: निष्पादित और अनुप्रमाणित है । भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 59 विल करने वाले व्यक्ति की सक्षमता के संबंध में उपबंध करती है । इसमें यह कहा गया है कि स्वस्थचित्त प्रत्येक व्यक्ति जो अवयस्क न हो, विल के द्वारा अपनी संपत्ति का निपटान कर सकेगा । इस धारा के स्पष्टीकरण-I में यह कहा गया है कि कोई विवाहित स्त्री किसी संपत्ति का विल के द्वारा निपटान कर सकती है और वह इसे अपने जीवनकाल के दौरान स्वयं अपने कार्य द्वारा अंतरित कर सकती है । उक्त अधिनियम की धारा 63 विल के निष्पादन की रीति से संबंधित है जिसमें यह उपबंध किया गया है कि (क) वसीयतकर्ता विल पर अपने हस्ताक्षर करेगा या अपना चिह्न लगाएगा या उस पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसकी उपस्थिति में और उसके निदेशानुसार हस्ताक्षर किया जाएगा ; (ख) वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर या चिह्न या उसके लिए हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर ऐसे किए जाएंगे या लगाए जाएंगे कि उससे यह प्रकट हो कि उसके द्वारा लेख को विल के रूप में प्रभावी करने का आशय था ; (ग) विल को ऐसे दो या अधिक साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित किया जाएगा, जिनमें से प्रत्येक ने वसीयतकर्ता को विल पर हस्ताक्षर करते हुए या चिह्न लगाते हुए देखा है या वसीयतकर्ता की उपस्थिति में और उसके निदेशानुसार किसी अन्य

व्यक्ति को विल पर हस्ताक्षर करते हुए देखा है या वसीयतकर्ता से उसके हस्ताक्षर या चिह्न की या ऐसे अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षर की वैयक्तिक अभिस्वीकृति प्राप्त की है ; और प्रत्येक साक्षी वसीयतकर्ता की उपस्थिति में विल पर हस्ताक्षर करेगा किन्तु यह आवश्यक नहीं होगा कि एक से अधिक साक्षी एक ही समय पर उपस्थित हों और अनुप्रमाणन का कोई विशेष प्ररूप आवश्यक नहीं होगा । साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 यह अपेक्षा करती है कि यदि किसी दस्तावेज का अनुप्रमाणित होना विधि द्वारा अपेक्षित है, तो उसे साक्ष्य के रूप में उपयोग में न लाया जाएगा, जब तक कि कम से कम एक अनुप्रमाणक साक्षी, यदि कोई अनुप्रमाणक साक्षी जीवित और न्यायालय की आदेशिका के अध्यधीन हो तथा साक्ष्य देने के योग्य हो, उसका निष्पादन साबित करने के प्रयोजन से न बुलाया गया हो । (पैरा 6, 7, 8 और 9)

अभिलेख से यह प्रकट होता है कि दोनों अनुप्रमाणन साक्षियों की पहले ही मृत्यु हो चुकी है इसलिए धारा 68 का अनुपालन किया गया है । विल का लेखक रामचन्द्र प्रसाद पी. डब्ल्यू. 3 के रूप में न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ है और उसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि श्रीमती मोतीराजो कौर ने उसे विल की अन्तर्वस्तु लिखवाने के लिए अपने आवास पर बुलाया था । इस साक्षी ने श्रीमती मोतीराजो कौर के बोलने पर विल प्रारूपित की थी । विल मिथिलेश कुमार सिंह और अवधेश कुमार सिंह के हक में की गई थी । विल की अन्तर्वस्तु श्रीमती मोतीराजो कौर को पढ़कर सुनाई गई थी और उसने इसे सही पाने के पश्चात् विल के ऊपर अपना अंगुष्ठ चिह्न लगाया था और श्रीमती मोतीराजो कौर के कहने पर साक्षी शत्रुघ्न सिंह और राधा साह ने भी साक्षियों के रूप में विल पर अपने हस्ताक्षर किए थे । चूंकि विल के लेखक ने न्यायालय के समक्ष यह कहा है कि वसीयतकर्ता ने विल के ऊपर अपने बाएं हाथ का अंगूठा लगाया था और रजिस्ट्रीकृत विलेखों में भी वसीयतकर्ता के बाएं हाथ के उस अंगूठे से मेल खाते हैं जो कि उसने विक्रय विलेख में एक विक्रेता के रूप में लगाए थे । प्रत्यर्थियों ने विल के निष्पादन के संबंध में अपने भार का समुचित रूप से निर्वहन कर दिया है और इसलिए भार इसके खंडन के लिए अपीलार्थियों के ऊपर

जाता है । मात्र इस कारण से कि सिविल वाद में फाइल किए गए समझौता आवेदन पर जिसे अभिलेख पर प्रदर्श-ए के रूप में पेश किया गया है, हस्ताक्षरों के आधार पर यह कहा गया है कि श्रीमती मोतीराजो कौर ने अपने पति की संपत्ति में अपना दावा त्यक्त कर दिया था, विल के ऊपर उसके बाएं हाथ के अंगूठे को अविश्वसनीय नहीं बनाएगा विशेषतया तब जबकि अभिलेख पर रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख पेश किया गया है जिसके बारे में सम्यक् अनुपालन की उपधारणा की गई है । अत: यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि प्रस्तावित विल श्रीमती मोतीराजो कौर द्वारा सम्यक्त: निष्पादित विल है । विल के सम्यक् अनुप्रमाणन का सबूत और साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 की अपेक्षा को अभिलेख पर पेश किए गए साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए त्यक्त किया जाएगा क्योंकि अनुप्रमाणन साक्षियों की मृत्यु हो चुकी है और विल के लेखक ने विल के निष्पादन को प्रमाणित किया है । अत: न्यायालय को आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई कारण प्रतीत नहीं होता है इसलिए यह अपील सारहीन होने के कारण खारिज की जाती है । (पैरा 10 और 11)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 167.

1986 के प्रोबेट मामला सं. 18 में विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश चतुर्थ, छपरा द्वारा तारीख 31 जनवरी, 2011 को पारित निर्णय के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री सिधेन्द्र नारायण सिंह और संजीव कुमार

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री विश्वनाथ प्रसाद सिन्हा और संजय कुमार सिंह

न्यायमूर्ति बीरेन्द्र कुमार – पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना गया ।

2. यह अपील 1986 के प्रोबेट मामला सं. 18 में विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, चतुर्थ, छपरा द्वारा तारीख 31 जनवरी, 2011 को

पारित उस निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा विद्वान् निचले न्यायालय ने तारीख 16 जून, 1985 की विल के संबंध में जिसके बारे में यह कहा गया है कि वह श्रीमती मोतीराजो कौर पत्नी रामपत सिंह द्वारा निष्पादित की गई थी, प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के हक में प्रोबेट मंजूर किया है ।

3. आक्षेप के आधारों पर विचार करने के पूर्व विल की पृष्ठभूमि और पक्षकारों के बीच नातेदारी की प्रकृति का उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है । किशन सिंह नामक व्यक्ति के दो पुत्र अर्थात् हरदेव सिंह और भुनेश्वर सिंह थे । उपर्युक्त हरदेव सिंह के पांच पुत्र अर्थात् राम लक्ष्मण, राम बिहारी सिंह, जंग बहादुर, दीप नारायण सिंह और रामपत सिंह थे । श्रीमती मोतीराजो कौर अर्थात् विल की निष्पादक रामपत सिंह की विधवा थी और प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 अर्थात् मिथिलेश कुमार सिंह और अवधेश कुमार सिंह जिनके हक में विल निष्पादित की गई थी, उपर्युक्त दीप नारायण सिंह के पुत्र हैं । श्रीमती मोतीराजो कौर के सह-अंशधारकों ने विल की सत्यता को आक्षेपित करते हुए प्रोबेट मामले का विरोध किया और विल के निष्पादन को इस आधार पर आक्षेपित किया कि श्रीमती मोतीराजो कौर को उक्त विल निष्पादित करने का कोई अधिकार नहीं था । यह कहा गया है कि मोतीराजो कौर द्वारा संपत्ति के अधिकार 1972 के विभाजन वाद सं. 237 में फाइल किए गए तारीख 16 मार्च, 1978 के समझौता विलेख (प्रदर्श-ए) द्वारा त्यक्त कर दिए गए थे जिसके द्वारा श्रीमती मोतीराजो कौर ने केवल भरणपोषण का अधिकार स्वीकार किया था और उसके पति की संपत्ति सह-अंशधारकों में बंट गई थी ।

4. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अभिलेख पर की सामग्री (प्रदर्श-ए) से यह उपदर्शित होता है कि श्रीमती मोतीराजो कौर ने पहले ही वर्ष 1978 में अपनी संपत्ति के अधिकार अन्य सह-अंशधारकों के हक में छोड़ दिए थे । अत: उसे विल को निष्पादित करने का कोई अधिकार नहीं था । इसके अतिरिक्त विल की सत्यता इस कारण से संदेहास्पद है कि समझौता अर्जी में श्रीमती मोतीराजो कौर के हस्ताक्षर हैं जबकि विल पर उसके बाएं हाथ का अंगूठा

लगाया गया है । उन्होंने अगली दलील यह दी है कि इस मामले में किसी भी अनुप्रमाणन साक्षी की परीक्षा नहीं कराई गई है और इसलिए विद्वान् निचले न्यायालय ने यह गलत रूप से अभिनिर्धारित किया है कि विल का लेखक अनुप्रमाणन साक्षी था । विल के लेखक ने अपने साक्ष्य में यह कहीं भी नहीं कहा है कि वह विल का अनुप्रमाणन साक्षी था ।

5. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि प्रोबेट न्यायालय वसीयतकर्ता की हकदारी पर विचार नहीं कर सकता । वह केवल यह सुनिश्चित कर सकता है कि क्या वह विल जो प्रोबेट मामले की विषयवस्तु थी, सम्यक्त: निष्पादित और अनुप्रमाणित की गई थी और क्या उसे वसीयतकर्ता ने स्वेच्छा से निष्पादित किया था । दूसरे शब्दों में क्या ऐसी विल असम्यक प्रभाव द्वारा या कपट करके अथवा ज़ोर-जबरदस्ती इत्यादि द्वारा तो नहीं कराई गई थी जैसा कि इस मामले में नहीं है । यह दलील दी गई है कि किसी विल के निष्पादन का संपूर्ण प्रयोजन नैसर्गिक विरासत के क्रम में परिवर्तित हो जाता है । अभिलेख पर यह आया है कि और इस बारे में विद्वान् निचले न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में भी यह चर्चा की है कि दोनों अनुप्रमाणन साक्षियों की पहले ही मृत्यु हो चुकी है । इन परिस्थितियों में अनुप्रमाणन साक्षियों की परीक्षा न कराना सम्यक् निष्पादन के सबूत के रास्ते में बाधा नहीं हो सकता । उन्होंने अगली दलील यह दी है कि श्रीमती मोतीराजो कौर की तारीख 4 जनवरी, 1986 को मृत्यु हो गई थी और विल के निष्पादन से पूर्व उसने बालो देवी के हक में तारीख 4 जून, 1985 को एक रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख (प्रदर्श-3) निष्पादित किया था और उक्त रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख पर श्रीमती मोतीराजो कौर ने अपने बाएं हाथ के अंगूठे का चिह्न लगाया था । चूंकि विक्रय विलेख एक रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख है इसलिए रजिस्ट्रीकरण प्राधिकारी के समक्ष इसका निष्पादन और प्रस्तुतीकरण विधि के अधीन उपधारित किया जाएगा । इस मामले में इसके प्रतिकूल कुछ साबित नहीं किया गया है ।

6. इस बारे में विधि सुस्थापित है कि किसी प्रोबेट न्यायालय से यह अपेक्षित नहीं है कि वह वसीयतकर्ता की हकदारी पर विचार करे । एकमात्र अपेक्षा यह सुनिश्चित करना है कि क्या पेश की गई विल

वसीयतकर्ता की सही विल है और क्या ऐसी विल सम्यक्त: निष्पादित और अनुप्रमाणित है ।

7. भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 59 विल करने वाले व्यक्ति की सक्षमता के संबंध में उपबंध करती है । इसमें यह कहा गया है कि स्वस्थचित्त प्रत्येक व्यक्ति जो अवयस्क न हो, विल के द्वारा अपनी संपत्ति का निपटान कर सकेगा । इस धारा के स्पष्टीकरण-I में यह कहा गया है कि कोई विवाहित स्त्री किसी संपत्ति का विल के द्वारा निपटान कर सकती है और वह इसे अपने जीवनकाल के दौरान स्वयं अपने कार्य द्वारा अंतरित कर सकती है ।

8. उक्त अधिनियम की धारा 63 विल के निष्पादन की रीति से संबंधित है जिसमें यह उपबंध किया गया है कि (क) वसीयतकर्ता विल पर अपने हस्ताक्षर करेगा या अपना चिह्न लगाएगा या उस पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसकी उपस्थिति में और उसके निदेशानुसार हस्ताक्षर किया जाएगा ; (ख) वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर या चिह्न या उसके लिए हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर ऐसे किए जाएंगे या लगाए जाएंगे कि उससे यह प्रकट हो कि उसके द्वारा लेख को विल के रूप में प्रभावी करने का आशय था ; (ग) विल को ऐसे दो या अधिक साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित किया जाएगा, जिनमें से प्रत्येक ने वसीयतकर्ता को विल पर हस्ताक्षर करते हुए या चिह्न लगाते हुए देखा है या वसीयतकर्ता की उपस्थिति में और उसके निदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को विल पर हस्ताक्षर करते हुए देखा है या वसीयतकर्ता से उसके हस्ताक्षर या चिह्न की या ऐसे अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षर की वैयक्तिक अभिस्वीकृति प्राप्त की है ; और प्रत्येक साक्षी वसीयतकर्ता की उपस्थिति में विल पर हस्ताक्षर करेगा किन्तु यह आवश्यक नहीं होगा कि एक से अधिक साक्षी एक ही समय पर उपस्थित हों और अनुप्रमाणन का कोई विशेष प्ररूप आवश्यक नहीं होगा ।

9. साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 यह अपेक्षा करती है कि यदि किसी दस्तावेज का अनुप्रमाणित होना विधि द्वारा अपेक्षित है, तो उसे साक्ष्य के रूप में उपयोग में न लाया जाएगा, जब तक कि कम से कम एक अनुप्रमाणक साक्षी, यदि कोई अनुप्रमाणक साक्षी जीवित और

न्यायालय की आदेशिका के अध्यधीन हो तथा साक्ष्य देने के योग्य हो, उसका निष्पादन साबित करने के प्रयोजन से न बुलाया गया हो ।

10. अभिलेख से यह प्रकट होता है कि दोनों अनुप्रमाणन साक्षियों की पहले ही मृत्यु हो चुकी है इसलिए धारा 68 का अनुपालन किया गया है । विल का लेखक रामचन्द्र प्रसाद पी. डब्ल्यू.-3 के रूप में न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ है और उसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि श्रीमती मोतीराजो कौर ने उसे विल की अन्तर्वस्तु लिखवाने के लिए अपने आवास पर बुलाया था । इस साक्षी ने श्रीमती मोतीराजो कौर के बोलने पर विल प्रारूपित की थी । विल मिथिलेश कुमार सिंह और अवधेश कुमार सिंह के हक में की गई थी । विल की अन्तर्वस्तु श्रीमती मोतीराजो कौर को पढ़कर सुनाई गई थी और उसने इसे सही पाने के पश्चात् विल के ऊपर अपना अंगुष्ठ चिह्न लगाया था और श्रीमती मोतीराजो कौर के कहने पर साक्षी शत्रुघ्न सिंह और राधा साह ने भी साक्षियों के रूप में विल पर अपने हस्ताक्षर किए थे । चूंकि विल के लेखक ने न्यायालय के समक्ष यह कहा है कि वसीयतकर्ता ने विल के ऊपर अपने बाएं हाथ का अंगूठा लगाया था और रजिस्ट्रीकृत विलेखों में भी वसीयतकर्ता के बाएं हाथ के उस अंगूठे से मेल खाते हैं जो कि उसने विक्रय विलेख में एक विक्रेता के रूप में लगाए थे । प्रत्यर्थियों ने विल के निष्पादन के संबंध में अपने भार का समुचित रूप से निर्वहन कर दिया है और इसलिए भार इसके खंडन के लिए अपीलार्थियों के ऊपर जाता है । मात्र इस कारण से कि सिविल वाद में फाइल किए गए समझौता आवेदन पर जिसे अभिलेख पर प्रदर्श-ए के रूप में पेश किया गया है, हस्ताक्षरों के आधार पर यह कहा गया है कि श्रीमती मोतीराजो कौर ने अपने पति की संपत्ति में अपना दावा त्यक्त कर दिया था, विल के ऊपर उसके बाएं हाथ के अंगूठे को अविश्वसनीय नहीं बनाएगा विशेषतया तब जबकि अभिलेख पर रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख पेश किया गया है जिसके बारे में सम्यक् अनुपालन की उपधारणा की गई है ।

11. अत: यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि प्रस्तावित विल श्रीमती मोतीराजो कौर द्वारा सम्यक्त: निष्पादित विल है । विल के सम्यक् अनुप्रमाणन का सबूत और साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 की

अपेक्षा को अभिलेख पर पेश किए गए साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए त्यक्त किया जाएगा क्योंकि अनुप्रमाणन साक्षियों की मृत्यु हो चुकी है और विल के लेखक ने विल के निष्पादन को प्रमाणित किया है । अत: मुझे आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई कारण प्रतीत नहीं होता है इसलिए यह अपील सारहीन होने के कारण खारिज की जाती है ।

12. तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि प्रोबेट न्यायालय पक्षकारों की हकदारी पर विचार नहीं कर सकता । पक्षकार इस बात के लिए स्वतंत्र हैं कि वे अन्य विवादों का समुचित न्यायालय द्वारा न्यायनिर्णयन करा सकते हैं ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

(2019) 2 सि. नि. प. 361 बम्बई

सुजान भबानी प्रसाद चटर्जी

बनाम

राजेन्द्र कुमार सिंह और एक अन्य

(2016 की रिट याचिका संख्या 430)

तारीख 18 जुलाई, 2019

न्यायमूर्ति संदीप के. शिंडे

रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16) – धारा 60 और 62 – प्रमाणपत्र का रजिस्ट्रीकरण – उप-रजिस्ट्रार द्वारा दस्तावेज पर पृष्ठांकन से दस्तावेज के सम्यक् रूप से निष्पादन की उपधारणा किया जाना – रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा फ्लैट का विक्रय – विक्रेता को संपूर्ण विक्रय प्रतिफल के संदाय के पश्चात् फ्लैट, जो बैंक को बंधक था और स्वत्व संबंधी दस्तावेज बैंक की अभिरक्षा में हैं, का विक्रय विलेख रजिस्ट्रीकृत कराया जाना – बैंक द्वारा फ्लैट के स्वत्व के दस्तावेजों को

क्रेता को हस्तगत न किया जाना अनुचित है और क्रेता स्वत्व अभिलेखों को प्राप्त करने का हकदार है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने तारीख 11 फरवरी, 2014 को एक विक्रय करार निष्पादित किया और याचियों को कतिपय नियमों और शर्तों के अध्यधीन रहते हुए थाणे के घोड़बंदर रोड स्थित नीलकंठ को-आपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड में फ्लैट संख्या 303, तृतीय तल, टाइप - सी 1,24,00,000/- रुपए के प्रतिफल में बेचने के लिए सहमत हुआ । करार के निबंधनों के अनुसार 17 लाख रुपए की रकम का संदाय बंधक (दस्तावेजों) की उपलब्धता, सोसाइटी से अनापत्ति प्रमाणपत्र और प्रतिवादियों और भवन निर्माता के मध्य निष्पादित फ्लैट के मूल करार, रजिस्ट्रीकरण रसीद और ऋण की रकम के संवितरण के लिए क्रेता के बैंक द्वारा अपेक्षित किसी अन्य दस्तावेज के अध्यधीन रहते हुए तारीख 5 मार्च, 2014 को या उसके पूर्व संदेय थे । करार तारीख 11 फरवरी, 2014 को उप-रजिस्ट्रार के समक्ष रजिस्ट्रीकृत हुआ । प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा वादी को तारीख 25 मार्च, 2014 को कब्जा हस्तगत कर दिया गया । उसी दिन प्रतिवादी संख्या 1 ने हाउसिंग सोसाइटी में अपने अंश याचियों के पक्ष में अंतरित किए जाने के लिए आवेदन कर दिया । तत्पश्चात् याचियों ने प्रत्यर्थियों/प्रतिवादियों के विरुद्ध 2014 का विशेष सिविल वाद संख्या 660 इन अनुतोषों की ईप्सा करते हुए संस्थित कराया कि (i) प्रतिवादी संख्या 2 को वादग्रस्त संपत्ति के संबंध में दस्तावेजों की संपूर्ण श्रृंखला जिसको प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 के पक्ष में बंधक रखा गया है और प्रतिवादी संख्या 2 की सुरक्षित अभिरक्षा में हैं, को हस्तगत करने के लिए निर्देशित किया जाए, (ii) प्रतिवादी संख्या 1 को वादी को 3,24,706/- रुपए (1,55,000/- रुपए + 1,24,000/- रुपए + 45,706/- रुपए) की रकम (यह वह रकम है जिसका संदाय प्रतिवादी संख्या 1 को विक्रय करार, जो प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा निष्पादित किया जाना माना जा सकता है, के अनुसार निर्धारित प्रतिफल मूल्य के आधिक्य में कर दिया गया) का संदाय करने के लिए आदेशित किया जाए और उसके विरुद्ध डिक्री पारित की जाए, (iii) प्रतिवादी संख्या 1 को वादी को मानसिक और शारीरिक

रूप से प्रताड़ित करने के लिए 5,00,000/- रुपए (पांच लाख रुपए मात्र) के प्रतिकर का संदाय करने के लिए भी निर्देशित और आदेशित किया जाए । वाद के लंबन के दौरान वादी ने प्रतिवादी संख्या 2, जो मुंबई स्थित बैंक ऑफ इंडिया का वरिष्ठ प्रबंधक है, को फ्लैट संख्या 303 के स्वत्व संबंधी दस्तावेज उसको हस्तगत किए जाने के लिए निर्देशित किए जाने की ईप्सा करते हुए आवेदन फाइल किया । विद्वान् न्यायाधीश ने उक्त आवेदन को तारीख 31 अक्तूबर, 2015 को अस्वीकृत कर दिया जिसके विरुद्ध यह रिट याचिका संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन फाइल की गई । याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इसलिए इस बाबत उपधारणा है जो रजिस्ट्रार के कार्यालय द्वारा दस्तावेज पर किए गए पृष्ठांकन की सत्यता से संबंधित होती है । रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 60(2) के अधीन पृष्ठांकन से उद्भूत होने वाली उपधारणा के साथ युगमित मामले के तथ्यों पर विचारोपरांत यह नहीं कहा जा सकता कि जब प्रतिवादी ने करार निष्पादित किया, तो वह करार की अंतर्वस्तुओं के बारे में अनभिज्ञ था । स्वीकृततः हमारे समक्ष उपस्थित मामले में रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 62 के निबंधनों के अनुसार रजिस्ट्रीकरण प्राधिकारी द्वारा जारी किया गया प्रमाणपत्र उपलब्ध है । यद्यपि प्रतिवादी संख्या 1 ने लिखित कथन फाइल किया है और दलील दी है कि सहमत प्रतिफल 2,20,00,000/- रुपए था, उसने अधिशेष रकम के लिए खंडन दावा फाइल नहीं किया है जो उसके अनुसार वादियों द्वारा देय है । यदि अंततः ऐसी कोई रकम देय पाई जाती है, जैसाकि दावा उसके द्वारा किया गया है, तो जब उसने लिखित कथन फाइल किया, तो उसके समक्ष खंडन दावा फाइल करने में कोई रुकावट नहीं थी । अतः मामले के तथ्यों पर विचारोपरांत मेरे विचार में याचियों/वादियों को प्रतिवादी संख्या 1 से फ्लैट के स्वत्व अभिलेखों को प्राप्त करने के उनके अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता । मैं वाद के निस्तारण तक इस दस्तावेज को रोके जाने का कोई कारण नहीं पाता । ऊपरवर्णित और अभिकथित कारणोंवश प्रतिवादी संख्या 2 को थाणे के छठे संयुक्त सिविल न्यायाधीश, वरिष्ठ वर्ग के न्यायालय में वादग्रस्त फ्लैट से

संबंधित मूल स्वत्व विलेखों को इस निर्णय को इंटरनेट पर अपलोड किए जाने की तारीख से दो सप्ताह के भीतर जमा करने के लिए निर्देशित किया जाता है और तत्पश्चात् विद्वान् न्यायालय इन दस्तावेजों को याचियों को दो सप्ताह के भीतर बिना शर्त हस्तगत कर देगा । आक्षेपित आदेश को अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । पूर्वोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए याचिका मंजूर और निस्तारित की जाती है । याची के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि याची को इन दस्तावेजों को दो सप्ताह के भीतर हस्तगत किए जाने के प्रयोजनार्थ दिए गए निर्देश के क्रियान्वयन को चार सप्ताह की अवधि के लिए स्थगित रखा जाए । मामले के तथ्यों पर विचारोपरांत और इस निर्णय में अभिकथित कारणोंवश याचियों के इस अनुरोध को अस्वीकृत किया जाता है । (पैरा 14, 15, 16 और 17)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की रिट याचिका संख्या 430.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से	सर्वश्री (डा.) डी. एस. हेटले और साथ में जमसंदेकर दीपक पुंडलिक
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री सनाय शाह, साथ में मैसर्स ननकानी एसोसिएट का प्रतिनिधित्व करने वाली (सुश्री) हुजेफा खोखावाला और (सुश्री) गौड़ी मेनन और श्री ओ. ए. दास

आदेश

सूचना जारी की गई । सुना । पक्षों की सहमति से मामले को ग्रहण किए जाने के प्रक्रम पर ही अंतिम रूप से सुना गया ।

2. याचियों (वादियों) ने प्रत्यर्थियों/प्रतिवादियों के विरुद्ध 2014 का विशेष सिविल वाद संख्या 660 प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) के विरुद्ध निम्नलिखित अनुतोषों की ईप्सा करते हुए संस्थित कराया :-

"(i) प्रतिवादी संख्या 2 को वादग्रस्त संपत्ति के संबंध में दस्तावेजों की संपूर्ण श्रृंखला, जिसको प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 के पक्ष में बंधक रखा गया और वे प्रतिवादी संख्या 2 की सुरक्षित अभिरक्षा में हैं, हस्तगत करने के लिए निर्देशित किया जाए ।

(ii) प्रतिवादी संख्या 1 को वादी को 3,24,706/- रुपए (1,55,000/- रुपए + 1,24,000/- रुपए + 45,706/- रुपए) की रकम, यह वह रकम है जिसका संदाय प्रतिवादी संख्या 1 को विक्रय करार, जो प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा निष्पादित किया जाना माना जा सकता है, के अनुसार निर्धारित प्रतिफल मूल्य के आधिक्य में कर दिया गया, का संदाय करने के लिए आदेशित किया जाए और उसके विरुद्ध डिक्री पारित की जाए और उसको निर्देशित किया जाए ।

(iii) प्रतिवादी संख्या 1 को वादी को मानसिक और शारीरिक रूप से प्रताड़ित करने के लिए 5,00,000/- रुपए (पांच लाख रुपए मात्र) के प्रतिकर का संदाय करने के लिए भी निर्देशित और आदेशित किया जाए ।"

3. वाद लंबन के दौरान वादी ने प्रतिवादी संख्या 2, जो मुंबई स्थित बैंक ऑफ इंडिया का वरिष्ठ प्रबंधक है, को फ्लैट संख्या 303 के स्वत्व संबंधी दस्तावेजों को उसे हस्तगत किए जाने के लिए और दस्तावेजों को वापस किए जाने के लिए निर्देशित किए जाने की ईप्सा करते हुए आवेदन फाइल किया । विद्वान् न्यायाधीश ने उक्त आवेदन को तारीख 31 अक्तूबर, 2015 को अस्वीकृत कर दिया जिसके विरुद्ध यह रिट याचिका संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन फाइल की गई ।

तथ्य

4. प्रत्यर्थी संख्या 1 (प्रतिवादी संख्या 1) ने तारीख 11 फरवरी, 2014 को विक्रय करार निष्पादित किया और याचियों को कतिपय नियमों और शर्तों के अध्यधीन रहते हुए थाणे (पश्चिम) के घोडबंदर रोड स्थित नीलकंठ को-आपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड में फ्लैट संख्या 303, तृतीय तल, टाइप - सी (जिसको इसमें इसके पश्चात् वादग्रस्त

फ्लैट कहकर निर्दिष्ट किया गया है) बेचने के लिए सहमत हुआ, जो निम्नलिखित हैं :-

"(1) कुल सहमत प्रतिफल 1,24,00,000/- रुपए है ।

(2) खंड 1(vii) के निबंधनों के अनुसार अधिशेष 17 लाख रुपए बंधक (दस्तावेजों) की उपलब्धता, सोसाइटी से अनापत्ति प्रमाणपत्र और प्रतिवादियों (क्रेताओं) और भवन निर्माता के मध्य निष्पादित फ्लैट के मूल करार, रजिस्ट्रीकरण रसीद और ऋण की रकम के संवितरण के लिए क्रेता के बैंक द्वारा अपेक्षित किसी अन्य दस्तावेज के अध्यधीन रहते हुए तारीख 5 मार्च, 2014 को या उसके पूर्व संदेय थे ।"

5. करार तारीख 11 फरवरी, 2014 को उप-रजिस्ट्रार के समक्ष रजिस्ट्रीकृत हो गया है । प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा वादी को तारीख 25 मार्च, 2014 को कब्जा हस्तगत कर दिया गया था । उसी दिन प्रतिवादी संख्या 1 ने हाउसिंग सोसाइटी में अपने अंश को याचियों के पक्ष में अंतरित किए जाने के लिए आवेदन किया ।

6. करार का खंड (iii) इस प्रकार है :-

"उक्त करार के मतावलंबन और मूल्य, जिसका संदाय क्रेताओं/अंतरितियों द्वारा पूर्ण रूप से कर दिया गया, पर विचारोपरांत, विक्रेता/अंतरिती ने क्रेताओं/अंतरितियों को चैक/कों के वसूल हो जाने की शर्त के अध्यधीन रहते हुए उक्त फ्लैट का रिक्त और शांतिपूर्ण कब्जा और उक्त फ्लैट से संबंधित समस्त मूल दस्तावेजों को तारीख ...../.../20 को या उसके पूर्व प्रदान करने का वचन दिया ।"

7. वादियों का यह पक्षकथन कि फ्लैट संख्या 303 का बंधक प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 - बैंक के पक्ष में किया गया था और करार के निबंधनों के अनुसार प्रतिवादी वादी को उसके और भवन निर्माता के मध्य निष्पादित फ्लैट संख्या 303 के मूल स्वत्व अभिलेखों और दस्तावेजों की श्रृंखला के समस्त दस्तावेजों को अभिप्राप्त करने और हस्तगत करने की बाध्यता के अधीन था ताकि वह उनको उनके बैंक से

ऋण सुनिश्चित करने के समर्थ कर सके । कुछ भी हो, कुछ कारणोंवश मूल स्वत्व अभिलेख वादी को इस तथ्य के बाद भी हस्तगत नहीं किए गए कि उन्होंने तारीख 11 फरवरी, 2014 के करार के अंतर्गत संपूर्ण प्रतिफल का संदाय कर दिया था । वादी का पक्षकथन यह है कि उन्होंने सहमत प्रतिफल के संदाय के अतिरिक्त प्रतिवादी संख्या 1 को 1.55 लाख रुपए का भी संदाय चैक द्वारा आनुषंगिक खर्चों के संबंध में किया । वादी का पक्षकथन यह है कि उन्होंने प्रतिवादी को सहमत प्रतिफल के आधिक्य में 3,23,706/- रुपए का संदाय किया है । उनका पक्षकथन यह है कि फ्लैट के बंधक के विरुद्ध उपलब्ध किए गए ऋण का पुनर्संदाय किया जा चुका है फिर भी प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा फ्लैट के स्वत्व अभिलेखों को उनके पक्ष में निर्मुक्त नहीं किया गया है और वे अभी भी प्रतिवादी बैंक की अभिरक्षा में पड़े हुए हैं । वादियों ने आगे यह अभिकथित किया है कि यद्यपि प्रतिवादी संख्या 1 ने करार के अंतर्गत प्रतिफल की प्राप्ति को स्वीकार किया है, फिर भी उसने स्वत्व दस्तावेजों को अवैध रूप से अपने कब्जे में रखा हुआ है और इन परिस्थितियों में उसने वाद संस्थित कराया और ऊपर अभिकथित अनुतोषों की ईप्सा की । प्रतिवादी संख्या 1 ने लिखित कथन फाइल किया और तारीख 11 फरवरी, 2014 के करार के निबंधनों को विवादित किया । प्रतिवादी संख्या 1 ने लिखित कथन के पैरा 8 और 14 में निवेदन किया कि सहमत प्रतिफल 1,24,00,000/- रुपए के आधिक्य में था । उसने पैरा 9 में अभिकथित किया है कि कुल प्रतिफल 2,10,00,000/- रुपए था । पैरा 3(घ) में उसकी प्रतिरक्षा निम्नलिखित है :-

> "3(घ). वादी ने फरवरी, 2014 के प्रथम सप्ताह में प्रतिवादी के समक्ष एक प्रत्यावेदन यह अभिकथित करते हुए प्रस्तुत किया कि अब वे विक्रय के लिए करार तैयार किए जाने पर जोर देंगे और उस करार में समस्त शर्तों और नियमों को वादी द्वारा प्रतिवादी को अभी तक संदाय किए गए प्रतिफल और उस अधिशेष रकम, जिसका संदाय किया जाना है, का उल्लेख करते हुए सम्मिलित करेंगे । वास्तव में वादियों ने तारीख 5 मार्च, 2014 तक 1,07,00,000/-रुपए (एक करोड़ सात लाख केवल) की रकम का संदाय कर दिया था और तद्द्वारा इस प्रतिवादी को उस पर

विश्वास हो गया था । समय व्यतीत होने के साथ-साथ वादियों ने स्वयं विक्रय करार तैयार कराया और उस पर आवश्यक स्टाम्प शुल्क का संदाय भी किया और उस करार के साथ स्थाई खाता संख्या कार्ड और फोटोग्राफ इत्यादि को सम्मिलित करते हुए समस्त सुसंगत दस्तावेजों को संलग्न कर दिया । तत्पश्चात् वादियों ने प्रतिवादी से थाणे के उप-रजिस्ट्रार के कार्यालय में तारीख 11 फरवरी, 2014 को रजिस्ट्रीकरण के लिए दस्तावेज प्रस्तुत करने और औपचारिकताओं को पूर्ण करने के लिए उपस्थित रहने का अनुरोध किया । वादियों ने प्रतिवादियों को सुस्पष्टतया सूचित किया कि समस्त सुसंगत नियम और शर्तें इत्यादि विक्रय करार में सम्मिलित की जा चुकी हैं । तत्पश्चात् से वादियों ने प्रतिवादियों को बिल्कुल ही विस्मयकारी रूप सूचित किया कि रजिस्ट्रार का कार्यालय सायंकाल 6.30 के पश्चात् भी खुला रहेगा और वे रजिस्ट्रीकरण की तारीख पर रात्रि 9.00 बजे तक कार्य करेंगे । प्रतिवादी वादी के प्रस्तुतीकरण पर विश्वास करते हुए उप-रजिस्ट्रार के कार्यालय में सायंकाल 6.00 बजे पहुंच गया जहां पर वादियों और दलाल ने प्रतिवादी संख्या 1 को उस विक्रय करार की अंतर्वस्तुओं का परिशीलन करने की अनुज्ञा प्रदान किए बिना ही प्रतिवादी के हस्ताक्षर विक्रय करार पर, जहां-जहां भी अपेक्षित थे, अभिप्राप्त कर लिए । उक्त हस्ताक्षर जल्दबाजी में यह कहते हुए अभिप्राप्त किए गए थे कि यदि इस विक्रय करार को रजिस्ट्रीकरण के लिए प्रस्तुत नहीं किया जाता तो तारीख 11 फरवरी, 2014 को दस्तावेज की रजिस्ट्रीकरण की संपूर्ण प्रक्रिया व्यर्थ हो जाएगी । इन परिस्थितियों में प्रतिवादी ने वादियों के प्रत्यावेदन पर भरोसा करते हुए कि करार पर हस्ताक्षर कर दिए और उसको अंततः तारीख 11 फरवरी, 2014 को रजिस्ट्रीकृत करा लिया गया । वादियों ने सुसंगत समय बिंदु पर प्रतिवादी को आश्वासन दिया कि वे रजिस्ट्रीकृत करार की सत्यापित प्रति की फोटोकापी प्रतिवादी को उसके पास समुचित अभिलेख की उपलब्धता के प्रयोजनार्थ प्रदान कर देंगे ।"

8. अन्य शब्दों में प्रत्यर्थी संख्या 1 का यह पक्षकथन है कि जिस प्रतिफल के लिए सहमति हुई थी वह 1,24,00,000/- रुपए के आधिक्य में था और वास्तव में वादी और दलाल द्वारा प्रतिवादी के हस्ताक्षर उसको करार की अंतर्वस्तुओं का परिशीलन करने की अनुज्ञा प्रदान किए बिना अभिप्राप्त किए गए थे । अत: उसने दलील दी कि उसके हस्ताक्षर जल्दबाजी में यह कहते हुए अभिप्राप्त किए गए थे कि यदि करार को रजिस्ट्रीकरण के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया तो दस्तावेज को रजिस्ट्रीकृत कराने की संपूर्ण प्रक्रिया व्यर्थ हो जाएगी । अत: उसने कहा कि इन परिस्थितियों में उसने वादियों के प्रत्यावेदनों पर विश्वास करते हुए करार पर हस्ताक्षर कर दिए और उस करार को उसी दिन रजिस्ट्रीकृत भी कराया गया ।

9. वादी ने वाद के लंबन के दौरान प्रतिवादी बैंक को इस बाबत निर्देशित किए जाने की ईप्सा की कि वह फ्लैट संख्या 303 के स्वत्व संबंधित दस्तावेज उसको हस्तगत कर दे । विद्वान् न्यायाधीश ने उक्त आवेदन को इस आधार पर अस्वीकृत कर दिया कि बैंकिंग विनियम अधिनियम और भारतीय रिजर्व बैंक के दिशानिर्देशों के अनुसार बैंक वादी के पक्ष में नहीं बल्कि बंधककर्ता के पक्ष में स्वत्व संबंधी मूल विलेख निर्मुक्त कर सकता है और निम्नलिखित आदेश पारित किया :–

> "प्रतिवादी संख्या 2 बैंककारी प्रक्रिया और विधि और भारतीय रिजर्व बैंक दिशानिर्देशों के अनुसार केवल प्रतिवादी संख्या 1 के पक्ष में स्वत्व संबंधी विलेख निर्मुक्त कर सकता है और प्रतिवादी संख्या 1 बैंक से समस्त मूल दस्तावेज प्राप्त करेगा और तत्समय इस वाद में सिविल अधिकारों के न्यायनिर्णय के प्रयोजनार्थ मूल स्वत्व विलेखों की प्रमाणित प्रतियां अभिलेख पर उपलब्ध करा दी जाएंगी ।"

10. इसी आदेश से व्यथित होकर यह रिट याचिका फाइल की गई । अब प्रश्न यह उद्भूत होता है कि क्या विद्वान् न्यायाधीश फ्लैट के स्वत्व संबंधी विलेखों को याची के पक्ष में निर्मुक्त किए जाने और वादी को हस्तगत किए जाने के प्रयोजनार्थ याची के अनुरोध को अस्वीकृत करने में न्यायानुमत था ।

11. निर्विवाद रूप से विक्रय करार तारीख 11 फरवरी, 2014 को निष्पादित किया गया था, जो एक रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज है और जिसमें सहमत प्रतिफल 1,24,00,000/- रुपए है । प्रतिवादी संख्या 1 ने इस करार के मतावलंबन में फ्लैट संख्या 303 का कब्जा वादी को तारीख 25 मार्च, 2014 के कब्जा पत्र, जिसमें उसने समस्त प्रतिफल की प्राप्ति को निम्नलिखित शब्दों में स्वीकार किया है, द्वारा दे दिया था :-

> "अत:, मैंने सुजन चटर्जी और श्रीमती चटर्जी से 1,24,00,000/- रुपए का संपूर्ण प्रतिफल या पूर्ण और अंतिम मूल्य प्राप्त कर लिया और अब उनके द्वारा वादग्रस्त फ्लैट के अंशों के अंतरण के बाबत कुछ भी देय नहीं है ।"

12. प्रतिवादी ने उसी दिन सोसाइटी के सचिव से फ्लैट के अंशों को उसके पक्ष में अंतरित किए जाने और वादियों को सोसाइटी के सदस्य के रूप में स्वीकार किए जाने, चूंकि उसने फ्लैट संख्या 303 वादियों को बेच दिया है, का अनुरोध किया । इसके अतिरिक्त प्रतिवादी द्वारा हस्ताक्षरित एक बिना तारीख वाली रसीद भी है जिसके माध्यम से उसने फ्लैट संख्या 303 के विक्रय के बाबत पूर्ण और अंतिम मूल्य/प्रतिफल प्राप्त किए जाने को स्वीकार किया है । इस रसीद को प्रस्तावित अंतरितियों द्वारा सोसाइटी की सदस्यता के लिए प्रस्तुत किए गए आवेदन प्रपत्र के साथ संलग्न किया गया है । प्रतिवादी संख्या 1 करार के अधीन चैकों की वसूली के अध्यधीन रहते हुए उक्त फ्लैट से संबंधित समस्त मूल दस्तावेजों को फ्लैट के क्रेता को हस्तगत करने के लिए सहमत हो गया था । अत: रसीदों, कब्जा पत्र के परिशीलन और इस तथ्य से कि कब्जा हस्तगत किया जा चुका है और यह भी कि याचियों को सोसाइटी की सदस्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया है, प्रतिवादी संख्या 1 की इस दलील को स्वीकार किया जाना अपरिहार्य प्रतीत होता है कि निष्पादित किया गया करार उसको करार की अंतर्वस्तुओं का परिशीलन किए जाने की अनुज्ञा के बिना निष्पादित कराया गया था । उसने अपने लिखित कथन में यह दलील नहीं दी है कि तारीख 25 मार्च, 2014 का कब्जा पत्र और सोसाइटी की सदस्यता के लिए प्रस्तुत किए

गए आवेदन के साथ संलग्न रसीद भी दुर्व्यपदेशन और/या अनुचित प्रभाव का प्रयोग करके और/या उसकी अंतर्वस्तुओं को स्पष्ट किए बिना प्राप्त किए गए थे । कोई भी इस तथ्य को अनदेखा नहीं कर सकता कि वाद अक्तूबर, 2014 में संस्थित किया गया था और लिखित कथन अप्रैल, 2015 में फाइल किया गया था जिसमें प्रतिवादी संख्या 1 ने प्रथम बार सहमत प्रतिफल को विवादित किया और यह दलील दी कि करार उसके द्वारा जल्दबाजी में हस्ताक्षरित किया गया था और इन परिस्थितियों में उसकी अंतर्वस्तुओं को पढ़ने की इजाजत नहीं दी गई थी । तत्पश्चात्, प्रतिवादी संख्या 1 ने एक वर्ष पश्चात् प्रतिफल पर विवाद किया और दलील दी कि प्रतिफल 2,10,00,000/- रुपए था और न कि 1,24,00,000/- रुपए । यहां पर इस बात का भी उल्लेख किया जाता है कि करार निष्पादित किए जाने की तारीख से लिखित कथन फाइल किए जाने की तारीख तक प्रतिवादी संख्या 1 ने प्रतिफल के बारे में कोई शिकायत नहीं की थी । जब इस न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या 1 के काउंसेल से पूछा कि क्या अभिकथित दुर्व्यपदेश के लिए कोई दांडिक शिकायत फाइल की गई है, तो उन्होंने उत्तर दिया कि प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा ऐसी कोई शिकायत फाइल नहीं की गई है । यहां पर इस बात का भी उल्लेख किया जाता है कि प्रतिवादी संख्या 1 अनपढ़ व्यक्ति नहीं है और इसके अतिरिक्त इस बात का भी उल्लेख किया जाता है कि कोई भी प्रज्ञावान व्यक्ति फ्लैट का कब्जा तब तक हस्तगत नहीं करेगा जब तक कि वह क्रेता से संपूर्ण प्रतिफल प्राप्त नहीं कर लेता और न ही अपनी शिकायत फाइल करने में एक वर्ष से अधिक समय तक इंतजार करेगा । अत: मामले के तथ्यों पर विचारोपरांत विलंबपूर्वक इस बाबत किए गए पक्षकथन के संबंध में यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि इस प्रकार की कोई भी प्रतिरक्षा सद्भावी नहीं है और केवल एक अनुबोध है ।

13. रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 60 उपबंधित करती है कि :-

"रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र - (1) .....

(2) यह प्रमाणपत्र रजिस्ट्रीकरण अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित,

मुहरबंद और दिनांकित किया जाएगा और तत्पश्चात् इस बात को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ ग्रहणीय होगा कि दस्तावेज को इस अधिनियम द्वारा उपबंधित रीति में सम्यक् रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया है और धारा 59 में निर्दिष्ट पृष्ठांकन में उल्लिखित तथ्य, जैसाकि उसमें उल्लिखित हैं, प्रकट हुए हैं ।"

14. इसलिए इस बाबत उपधारणा है जो रजिस्ट्रार के कार्यालय द्वारा दस्तावेज पर किए गए पृष्ठांकन की सत्यता से संबंधित होती है । रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 60(2) के अधीन पृष्ठांकन से उद्भूत होने वाली उपधारणा के साथ युगमित मामले के तथ्यों पर विचारोपरांत यह नहीं कहा जा सकता कि जब प्रतिवादी ने करार निष्पादित किया, तो वह करार की अंतर्वस्तुओं के बारे में अनभिज्ञ था । स्वीकृततः हमारे समक्ष उपस्थित मामले में रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 62 के निबंधनों के अनुसार रजिस्ट्रीकरण प्राधिकारी द्वारा जारी किया गया प्रमाणपत्र उपलब्ध है ।

15. यद्यपि प्रतिवादी संख्या 1 ने लिखित कथन फाइल किया है और दलील दी है कि सहमत प्रतिफल 2,20,00,000/- रुपए था, उसने अधिशेष रकम के लिए खंडन दावा फाइल नहीं किया है जो उसके अनुसार वादियों द्वारा देय है । यदि अंततः ऐसी कोई रकम देय पाई जाती है, जैसाकि दावा उसके द्वारा किया गया है, तो जब उसने लिखित कथन फाइल किया, तो उसके समक्ष खंडन दावा फाइल करने में कोई रुकावट नहीं थी ।

16. अतः मामले के तथ्यों पर विचारोपरांत मेरे विचार में याचियों/वादियों को प्रतिवादी संख्या 1 से फ्लैट के स्वत्व अभिलेखों को प्राप्त करने के उनके अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता । मैं वाद के निस्तारण तक इस दस्तावेज को रोके जाने का कोई कारण नहीं पाता । ऊपरवर्णित और अभिकथित कारणोंवश प्रतिवादी संख्या 2 को थाणे के छठे संयुक्त सिविल न्यायाधीश, वरिष्ठ वर्ग के न्यायालय में वादग्रस्त फ्लैट से संबंधित मूल स्वत्व विलेखों को इस निर्णय को इंटरनेट

पर अपलोड किए जाने की तारीख से दो सप्ताह के भीतर जमा करने के लिए निर्देशित किया जाता है और तत्पश्चात् विद्वान् न्यायालय इन दस्तावेजों को याचियों को दो सप्ताह के भीतर बिना शर्त हस्तगत कर देगा । आक्षेपित आदेश को अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । पूर्वोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए याचिका मंजूर और निस्तारित की जाती है ।

17. याची के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि याची को इन दस्तावेजों को दो सप्ताह के भीतर हस्तगत किए जाने के प्रयोजनार्थ दिए गए निर्देश के क्रियान्वयन को चार सप्ताह की अवधि के लिए स्थगित रखा जाए । मामले के तथ्यों पर विचारोपरांत और इस निर्णय में अभिकथित कारणोंवश याचियों के इस अनुरोध को अस्वीकृत किया जाता है ।

याचिका मंजूर की गई ।

अवि.

(2019) 2 सि. नि. प. 373 **राजस्थान**

हाजी अमीन सिरोहा

बनाम

डूंगरमल और एक अन्य

(2018 सिविल रिट याचिका संख्या 5820)

तारीख 10 अगस्त, 2018

न्यायमूर्ति आलोक शर्मा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 227 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 6, नियम 17 और आदेश 7, नियम 14(3)] – पोषणीयता – सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6, नियम 17 और आदेश 7, नियम 14(3) के अधीन दो पूर्णतया भिन्न आवेदनों पर पारित आदेशों को चुनौती देते हुए याचिका फाइल किया जाना – प्रत्येक आदेश

पृथक्वाद कारण गठित करता है, अत: दोनों आदेशों के विरुद्ध एकल रिट याचिका पोषणीय नहीं होगी ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 6, नियम 17 – अभिवचनों का संशोधन – विवाद्यक विरचित किए जाने के अनेक माह पश्चात् वादपत्र के संशोधन की ईप्सा उन तथ्यों को वादपत्र में सम्मिलित किए जाने के प्रयोजनार्थ की गई, जो वाद फाइल किए जाने के समय वादी के संज्ञान में थे – संशोधन प्रार्थनापत्र पोषणीय नहीं होगा और विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा न्यायत: खारिज किया गया ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 7, नियम 14(3) – दस्तावेजों का प्रस्तुतीकरण – न्यायालय की अनुज्ञा – यह उपबंध प्रक्रिया के इस नियम का अपवाद है कि वादी वादपत्र के साथ आरंभिक प्रक्रम पर ही अपने पक्षकथन के समर्थन में दस्तावेज फाइल करता है – इस उपबंध के अधीन अनुध्यात अपवाद का अवलंब केवल विचारण न्यायालय की अनुज्ञा पर ही लिया जा सकता है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि याची-वादी ने प्रत्यर्थियों-प्रतिवादियों के विरुद्ध स्थायी व्यादेश के लिए यह प्रकथन करते हुए वाद फाइल किया कि वह 410 वर्ग गज की माप वाले एक भूखंड का स्वामी है और जिसको उसने तारीख 20 जून, 2008 को प्रतिवादी संख्या 2 विनोद कुमार से 1,47,000/- रुपए के प्रतिफल के बदले रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा क्रय किया । वादी ने वादग्रस्त भूखंड पर कब्जा दिलाए जाने का दावा किया है । उसके द्वारा यह अभिकथित किया गया है कि उसने वादग्रस्त भूखंड क्रय करने के पश्चात् उस पर निर्माण कराया किंतु प्रतिवादी संख्या 1 डूंगरमल उसको बेदखल करने की धमकी दे रहा है । प्रतिवादियों ने अपना लिखित कथन यह अभिकथित करते हुए फाइल किया कि उनके ऊपर समन तामील नहीं हुए, फिर भी तारीख 30 मार्च, 2016 को विवाद्यक विरचित कर दिए गए । तत्पश्चात् वादी ने बाद में तारीख 21 सितंबर, 2016 को अभिलेख पर कुछ दस्तावेज लिए जाने हेतु सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 14 के अधीन अपने पक्षकथन को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ आवेदन फाइल किया । उसने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6, नियम 17 के अधीन

वादपत्र संशोधित किए जाने के प्रयोजनार्थ तारीख 10 जुलाई, 2017 को एक अन्य आवेदन भी यह अभिकथित करते हुए फाइल किया कि ईप्सित संशोधन के कारण वाद की प्रकृति परिवर्तित नहीं होगी । प्रतिवादियों द्वारा दोनों ही आवेदनों का विरोध किया गया । विचारण न्यायालय ने वादी और प्रतिवादियों निवेदनों पर विचारोपरांत अभिनिर्धारित किया कि ऐसे दस्तावेज, जिनको वादपत्र में भी निर्दिष्ट नहीं किया गया, को अत्यधिक विलंब के पश्चात् अभिलेख पर लाए जाने की ईप्सा किए जाने का कोई उचित कारण नहीं है । विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विवाद्यक विरचित किए जा चुके हैं और वादी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 14(3) के अधीन दस्तावेजों को फाइल किए जाने में विलंब का कोई समुचित स्पष्टीकरण और न्यायालय द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग किए जाने के लिए कोई समुचित आधार प्रस्तुत नहीं किया गया है । विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि आवेदन वाद के विचारण को विलंबित किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए हैं और आवेदनों को 200/- रुपए की लागत अधिरोपित करते हुए खारिज कर दिया । याची-वादी इस आदेश से व्यथित हैं जिसके द्वारा आदेश 7, नियम 14 और आदेश 6, नियम 17 सपठित धारा 151 के अधीन फाइल किए गए उसके आवेदन को खारिज कर दिया गया । अत: वर्तमान रिट याचिका फाइल की गई । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – मेरी सुविचारित राय है कि संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन सम्मिश्र याचिका जिसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के दो पूर्णतया पृथक् और सुभिन्न उपबंधों, एक आदेश 6, नियम 17 है और दूसरा आदेश 7, नियम 14(3) है, पर पारित दो आदेशों को चुनौती दी गई है, पोषणीय नहीं है । प्रत्येक आवेदन को खारिज किए जाने के कारण एक पृथक् वादकारण गठित हुआ है । इसलिए याचिका इसी आधार पर खारिज किए जाने योग्य है । फिर भी सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 14(3) के अधीन फाइल किए गए आवेदन और आदेश 6, नियम 17 के अधीन फाइल किए गए आवेदन, दोनों पर विचारण न्यायालय द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए पारित किए गए आदेश पर विचार किया गया और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री

और अन्य कानूनी उपबंधों के आधार पर विचार करते हुए निष्कर्ष निकाला गया । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6, नियम 17 का परंतुक ऐसे अभिवचनों को संशोधित किए जाने के विरुद्ध चेतावनी देता है जो विवाद्यकों के विरचित किए जाने के बाद के हैं । इसका एक लोक प्रयोजन है अर्थात् मुकदमे के किसी पक्ष द्वारा विचारण को विलंबित किए जाने और विपक्षी को तद्नुसार प्रताड़ित किए जाने से बचाने के लिए सिविल विवादों का शीघ्रतापूर्वक निस्तारण और तत्समय रिष्टि का अपवर्जन । हमारे समक्ष उपस्थित मामले में वादपत्र के संशोधन की ईप्सा तारीख 30 मार्च, 2016 को विवाद्यक विरचित किए जाने के अनेक माह पश्चात् की गई थी । इसके अलावा ईप्सित संशोधन ऐसे तथ्यों से संबंधित हैं जो वादी के संज्ञान में थे जब वाद फाइल किया गया । इसके अलावा ईप्सित संशोधन वादपत्र में उठाए गए विवाद में वास्तविक प्रश्नों के विनिर्धारण के लिए आवश्यक नहीं थे, जैसाकि विचारण न्यायालय ने अभिलिखित किया है और वादी के काउंसेल इस बात को साबित कर पाने में विफल रहे हैं । समान रूप से वादी अपने वादपत्र के समर्थन में ऐसे दस्तावेजों, जिनके बारे में उसने अपने अभिवचनों में कोई प्रकथन नहीं किया है, को विलंबपूर्वक फाइल किए जाने की अनुज्ञा प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ विचारण न्यायालय द्वारा अपने विवेकाधिकार का प्रयोग किए जाने के लिए कोई उचित और युक्तिसंगत आधार प्रस्तुत नहीं कर सके । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 14(3) प्रक्रिया के इस नियम का अपवाद है कि वादी अपने पक्षकथन के समर्थन में स्वयं वादपत्र के साथ आरंभ में ही दस्तावेज फाइल करे । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 14(3) के अधीन अपवाद का अवलंब केवल विचारण न्यायालय की अनुज्ञा द्वारा ही लिया जा सकता है । न्यायालय की यह अनुज्ञा वैवेकिक है । अत: तथ्यों के आधार पर सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 14(3) के अधीन ईप्सित अनुज्ञा सुसंगत होती है । जहां विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि विवादित दस्तावेज उन कारणोंवश जो वादी के संज्ञान में थे, के आधार पर पहले भी फाइल किए जा सकते थे या जो सम्यक् तत्परतावश उसके संज्ञान में हो सकते थे या अभिलेख पर दस्तावेजों को लाए जाने की ईप्सा किए जाने में विलंब

का स्पष्टीकरण नहीं दिया गया या विवादित दस्तावेज न्यायालय के समक्ष न्यायनिर्णयन के लिए लंबित विवाद्यकों के प्रयोजनार्थ असुसंगत थे, तो वह अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर सकता है और अभिलेख पर ऐसे दस्तावेजों को स्वीकार किए जाने की अनुज्ञा प्रदान करने से मना कर सकता है । विचारण न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 14(3) के अधीन फाइल किए गए वादी के आवेदन को खारिज करते हुए यही किया है । (पैरा 10)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2017] (2017) 5 एस. सी. सी. 212 :
चक्रेश्वरी कंस्ट्रक्सन प्राइवेट लिमिटेड
बनाम **मनोहर लाल** । 7

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 सिविल रिट याचिका संख्या 5820.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन याचिका ।

याची की ओर से श्री इंतजार अली

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री बृजभूषण ओझा

आदेश

याची-वादी 2011 के वाद संख्या 14 में झुंझुनू के सिविल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश से व्यथित है जिसके द्वारा आदेश 7, नियम 14 और आदेश 6, नियम 17 सपठित धारा 151 के अधीन फाइल किए गए उसके आवेदन को खारिज कर दिया गया ।

2. मामले के तथ्य यह है कि वादी ने प्रत्यर्थियों-प्रतिवादियों (जिनको इसमें इसके पश्चात् 'प्रतिवादियों' कह कर निर्दिष्ट किया गया है) के विरुद्ध स्थायी व्यादेश के लिए यह प्रकथन करते हुए वाद फाइल किया कि वह 410 वर्ग गज की माप वाले एक भूखंड, जो वादग्रस्त संपत्ति है, का स्वामी है और जिसको उसने तारीख 20 जून, 2008 को

प्रतिवादी संख्या 2 विनोद कुमार से 1,47,000/- रुपए के प्रतिफल के बदले रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा क्रय किया है । वादी ने वादग्रस्त भूखंड पर कब्जा दिलाए जाने के लिए दावा किया है । उसके द्वारा यह अभिकथित किया गया कि उसने वादग्रस्त भूखंड क्रय करने के पश्चात् उस पर निर्माण कराया । प्रतिवादी संख्या 1 डूंगरमल उसको बेदखल करने की धमकी दे रहा है । वादकारण उद्भूत होने पर उसने वाद फाइल किया । प्रतिवादियों ने अपने लिखित कथन यह अभिकथित करते हुए फाइल किया कि उनके ऊपर समन तामील नहीं हुए थे और तारीख 30 मार्च, 2016 को विवाद्यक विरचित कर दिए गए थे ।

3. वादी ने तारीख 21 सितंबर, 2016 को अभिलेख पर कुछ दस्तावेजों को लिए जाने हेतु सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 14 के अधीन आवेदन वाद में अपने पक्षकथन को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किया । उसने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6, नियम 17 के अधीन वादपत्र को संशोधित किए जाने के प्रयोजनार्थ तारीख 10 जुलाई, 2017 को एक अन्य आवेदन भी यह अभिकथित करते हुए फाइल किया कि ईप्सित संशोधन के कारण वाद की प्रकृति परिवर्तित नहीं होगी । प्रतिवादियों द्वारा दोनों ही आवेदनों का विरोध किया गया ।

4. विचारण न्यायालय ने वादी और प्रतिवादियों, दोनों के ही निवेदनों पर विचारोपरांत अभिनिर्धारित किया कि ऐसे दस्तावेजों, जिनको वादपत्र में भी निर्दिष्ट नहीं किया गया, को अत्यधिक विलंब के पश्चात् अभिलेख पर लाए जाने की ईप्सा किए जाने का कोई उचित कारण नहीं है । विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विवाद्यक विरचित किए जा चुके हैं और वादी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 14(3) के अधीन दस्तावेज फाइल किए जाने में विलंब का कोई समुचित स्पष्टीकरण और न्यायालय द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग किए जाने के लिए कोई समुचित आधार प्रस्तुत नहीं किया गया है । विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि आवेदन वाद के विचारण को विलंबित किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया है और आवेदन को

200/- रुपए की लागत अधिरोपित करते हुए खारिज कर दिया ।

5. वादी का वादपत्र को संशोधित किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए आवेदन को भी विचारण न्यायालय द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि वाद में अंतर्वलित विवाद्यक तारीख 30 मार्च, 2016 को विरचित किए गए थे और उसके पश्चात् ही यह आवेदन तारीख 10 जुलाई, 2017 को उस तारीख या घटना, जिसके द्वारा वादपत्र में नए तथ्यों को संशोधन द्वारा सम्मिलित किए जाने की ईप्सा की गई, का प्रकटीकरण किए बिना फाइल किया गया और इस संशोधन आवेदन के द्वारा नए तथ्यों को सम्मिलित किए जाने की ईप्सा की गई और क्या यह तथ्य उस समय वादी के संज्ञान में थे जब वाद फाइल किया गया ।

6. वादी के काउंसेल ने निवेदन किया कि अभिलेख पर जिन संशोधनों को लाए जाने की ईप्सा की गई है, वादी के लिए उसके वाद को साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ सुसंगत थे और आवेदन को न्यायहित में मंजूर किया जाना चाहिए था चूंकि उस समय वाद वादी के साक्ष्य के प्रक्रम पर लंबित था और प्रतिवादी पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ने वाला था । काउंसेल ने निवेदन किया कि विचारण न्यायालय मामले में न्याय किए जाने को ध्यान में रखे बिना सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6, नियम 17 के परंतुक द्वारा अत्यधिक प्रभावित हो गया । विचारण न्यायालय उसके समक्ष लंबित विवाद के उचित और निष्पक्ष न्याय-निर्णयन के हित में अपनी अधिकारिता का प्रयोग कर पाने में विफल रहा ।

7. काउंसेल ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 14(3) के अधीन वादी के आवेदन को अस्वीकृत किए जाने के विवाद्यक पर **चक्रेश्वरी कंस्ट्रक्सन प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **मनोहर लाल**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया और निवेदन किया कि विचारण

---

[1] (2017) 5 एस. सी. सी. 212.

न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 14(3) का आश्रय लेते हुए वादपत्र के समर्थन में फाइल किए जाने वाले पश्चात्वर्ती दस्तावेजों को अभिलेख पर मंजूर किए जाने का विवेकाधिकार प्राप्त है । काउंसेल ने निवेदन किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 14(3) के अधीन आवेदन में अंतर्वलित दो दस्तावेज अर्थात् जगपाल सिंह पुत्र लख्खू सिंह के पक्ष में मालशीसर पंचायत द्वारा तारीख 5 सितंबर, 1990 का विक्रय विलेख और निरंजन द्वारा डूंगरमल के पक्ष में तारीख 1 जुलाई, 1997 का विक्रय विलेख विचारण न्यायालय के समक्ष विवाद्यकों के निपटारे के लिए सुसंगत थे । फिर भी विचारण न्यायालय अपने विवेकाधिकार का युक्तिसंगत रूप से प्रयोग करने और आवेदन को मंजूर करने में विफल रहा । प्रतिवादियों को कारित होने वाले विलंब/असुविधा के लिए उनको लागत दिलाकर भरपाई की जा सकती थी । काउंसेल ने निवेदन किया कि विचारण न्यायालय द्वारा अपने विवेकाधिकार के प्रयोग के लिए यांत्रिक रूप से मना किया जाना न्याय के सामंजस्य में नहीं है और इसलिए इस न्यायालय से पर्यवेक्षणीय अधिकारिता का प्रयोग करते हुए सुधार की अपेक्षा की गई है ।

8. प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री बृजभूषण ओझा ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश का समर्थन किया और याचिका को खारिज किए जाने की प्रार्थना की ।

9. सुना । विचार किया गया ।

10. मेरी सुविचारित राय है कि संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन सम्मिश्र याचिका जिसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के दो पूर्णतया पृथक् और सुभिन्न उपबंधों, एक आदेश 6, नियम 17 है और दूसरा आदेश 7, नियम 14(3) है, पर पारित दो आदेशों को चुनौती दी गई है, पोषणीय नहीं है । प्रत्येक आवेदन को खारिज किए जाने के कारण एक पृथक् वादकारण गठित हुआ है । इसलिए याचिका इसी आधार पर खारिज किए जाने योग्य है । फिर भी विचारण न्यायालय का सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 14(3) के अधीन फाइल किए गए आवेदन और आदेश 6, नियम 17 के अधीन फाइल किए गए

आवेदन, दोनों पर विचारण न्यायालय द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए पारित किए गए आदेश पर विचार किया गया और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री और अन्य कानूनी उपबंधों के आधार पर विचार करते हुए निष्कर्ष निकाला गया । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6, नियम 17 का परंतुक ऐसे अभिवचनों को संशोधित किए जाने के विरुद्ध चेतावनी देता है जो विवाद्यकों के विरचित किए जाने के बाद के हैं । इसका एक लोक प्रयोजन है अर्थात् मुकदमे के किसी पक्ष द्वारा विचारण को विलंबित किए जाने और विपक्षी को तद्नुसार प्रताड़ित किए जाने से बचाने के लिए सिविल विवादों का शीघ्रतापूर्वक निस्तारण और तत्समय रिष्टि का अपवर्जन । हमारे समक्ष उपस्थित मामले में वादपत्र के संशोधन की ईप्सा तारीख 30 मार्च, 2016 को विवाद्यक विरचित किए जाने के अनेक माह पश्चात् की गई थी । इसके अलावा ईप्सित संशोधन ऐसे तथ्यों से संबंधित हैं जो वादी के संज्ञान में थे जब वाद फाइल किया गया । इसके अलावा ईप्सित संशोधन वादपत्र में उठाए गए विवाद में वास्तविक प्रश्नों के विनिर्धारण के लिए आवश्यक नहीं थे, जैसाकि विचारण न्यायालय ने अभिलिखित किया है और वादी के काउंसेल इस बात को साबित कर पाने में विफल रहे हैं । समान रूप से वादी अपने वादपत्र के समर्थन में ऐसे दस्तावेजों, जिनके बारे में उसने अपने अभिवचनों में कोई प्रकथन नहीं किया है, को विलंबपूर्वक फाइल किए जाने की अनुज्ञा प्राप्त किए जाने के प्रयोजनार्थ विचारण न्यायालय द्वारा अपने विवेकाधिकार का प्रयोग किए जाने के लिए कोई उचित और युक्तिसंगत आधार प्रस्तुत नहीं कर सके । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 14(3) प्रक्रिया के इस नियम का अपवाद है कि वादी अपने पक्षकथन के समर्थन में स्वयं वादपत्र के साथ आरंभ में ही दस्तावेज फाइल करे । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 14(3) के अधीन अपवाद का अवलंब केवल विचारण न्यायालय की अनुज्ञा द्वारा ही लिया जा सकता है । न्यायालय की यह अनुज्ञा वैवेकिक है । अत: तथ्यों के आधार पर सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 14(3) के अधीन ईप्सित अनुज्ञा सुसंगत होती है । जहां विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि विवादित दस्तावेज

उन कारणोंवश जो वादी के संज्ञान में थे, के आधार पर पहले भी फाइल किए जा सकते थे या जो सम्यक् तत्परतावश उसके संज्ञान में हो सकते थे या अभिलेख पर दस्तावेजों को लाए जाने की ईप्सा किए जाने में विलंब का स्पष्टीकरण नहीं दिया गया या विवादित दस्तावेज न्यायालय के समक्ष न्यायनिर्णयन के लिए लंबित विवाद्यकों के प्रयोजनार्थ असुसंगत थे, तो वह अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर सकता है और अभिलेख पर ऐसे दस्तावेजों को स्वीकार किए जाने की अनुज्ञा प्रदान करने से मना कर सकता है । विचारण न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 14(3) के अधीन फाइल किए गए वादी के आवेदन को खारिज करते हुए यही किया है ।

11. मैं, मामले के समस्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता या विकृति नहीं पाता जिस कारणवश संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन मध्यक्षेप अपेक्षित हो ।

12. मैं याचिका में कोई बल नहीं पाता ।

याचिका खारिज की गई ।

अवि.

वर्धमान टैक्सटाइल्स लिमिटेड (मैसर्स)

बनाम

श्री गुरदयाल सिंह और अन्य

(2018 की सी. एम. पी. एम. ओ. सं. 457)

तारीख 1 जनवरी, 2019

न्यायमूर्ति संदीप शर्मा

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 63 और 65 – संविदा के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद – वादी द्वारा करार की मूल प्रति उपलब्ध न होने के आधार पर फोटो-प्रति को साबित करने हेतु द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने के लिए आवेदन फाइल किया जाना – ग्राह्यता – द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने के लिए तभी अनुज्ञा दी जानी चाहिए जब मूल दस्तावेज नष्ट हो गया हो या खो गया हो – जहां वादी द्वारा द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने के लिए विलंब से आवेदन किया गया हो वहां दूसरे पक्षकार को हर्जाना दिलाया जाना न्यायसंगत होगा ।

आवश्यक तथ्य जो अभिलेख पर मौजूद हैं, इस प्रकार हैं कि वादी ने प्रत्यर्थियों (जिन्हें आगे 'प्रतिवादीगण' कहा गया है) के विरुद्ध करार के विनिर्दिष्ट पालन द्वारा कब्जे के लिए और निषेधात्मक व्यादेश के लिए वाद फाइल किया था जिसमें उसने ये प्रकथन किए थे कि प्रतिवादीगण की पूर्व-हिताधिकारी अर्थात् श्रीमती द्रोपदी विधवा श्री टेहर पुत्र श्री साधू ने तारीख 26 फरवरी, 1994 और तारीख 25 अगस्त, 1994 को विक्रय करार किया था । वादी के अनुसार प्रतिवादीगण ने तारीख 25 अगस्त, 1994 के विक्रय करार द्वारा सम्पूर्ण संदाय (प्रतिफल) प्राप्त कर लिया था और उन्होंने सम्पूर्ण संदाय प्राप्त करने के पश्चात् स्थल पर वाद संपत्ति के कब्जे का परिदान कर दिया था । चूंकि प्रतिवादी सं. 1 से 3 को संपत्ति जो करारों की विषयवस्तु है और जिसे ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, विरासत में मिली थी इसलिए विरासत का नामांतरण प्रतिवादी सं. 1 से 3 के नाम में मंजूर किया गया था । वादी ने करार के अपने

भाग के पालन के लिए प्रतिवादीगण को सूचनाएं जारी की थीं तथापि, चूंकि वे अपने पूर्व-हिताधिकारी द्वारा निष्पादित विक्रय-करारों के बावजूद वादी के हक में अपने अंशों का विक्रय विलेख निष्पादित करने में विफल रहे इसलिए वादी ने प्रतिवादियों के विरुद्ध ऊपर निर्दिष्ट रूप में वाद संस्थित किया । विद्वान् निचले न्यायालय ने संबंधित पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर पेश की गई सामग्री के आधार पर वादी द्वारा फाइल किए गए आवेदन को खारिज कर दिया जिसके परिणामस्वरूप वादी ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान कार्यवाहियां फाइल करके इस न्यायालय के समक्ष समावेदन किया जिसमें उसने आक्षेपित आदेश को अपास्त करने और उक्त आवेदन को मंजूर करने के लिए अनुरोध किया है । याची ने विद्वान् सिविल न्यायाधीश, न्यायालय सं. 2, नालगढ़, जिला सोलन, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख 23 अगस्त, 2018 को पारित उस आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर यह प्रकीर्ण याचिका फाइल की है जिसके द्वारा याची (जिसे आगे 'वादी' कहा गया है) द्वारा भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 63/65 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को जिसमें तारीख 25 अगस्त, 1994 के करार की अन्तर्वस्तु को साबित करने के लिए द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने के लिए अनुमति हेतु अनुरोध किया गया था, खारिज किया गया है । अतः वादी ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान कार्यवाहियां फाइल की हैं जिसमें उसने ऊपर निर्दिष्ट आक्षेपित आदेश को अपास्त करने और साक्ष्य अधिनियम की धारा 63-65 के अधीन फाइल किए गए उसके आवेदन को मंजूर करने के लिए अनुरोध किया है । याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – पक्षकारों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेलों को सुनने और विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश को पारित करने में दिए गए कारणों और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन करने के पश्चात् यह न्यायालय वादी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेल श्री रोमेश वर्मा की इस दलील से सहमत है कि निचले न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करने में गलती की है क्योंकि साक्ष्य अधिनियम की धारा 63/65 के अधीन फाइल किए गए आवेदन का, जो वादी द्वारा उपाबंध-पी-4 के रूप में फाइल किया गया

है, सतर्कतापूर्वक परिशीलन करने मात्र से यह कहीं भी स्पष्ट नहीं होता है कि यह तारीख 26 फरवरी, 1994 की करार की फोटो प्रति जो पहले से ही अभिलेख पर है, साबित करने के लिए आशयित है और इसके बजाय वादी ने ऊपर निर्दिष्ट आवेदन द्वारा न्यायालय से तारीख 25 अगस्त, 1994 के करार की जिसके बारे में यह अभिकथित किया गया है कि यह प्रतिवादियों के पूर्व-हिताधिकारी द्वारा निष्पादित किया गया है, अन्तर्वस्तु को साबित करने के लिए अनुमति मांगी है । संभवत: वादी द्वितीयिक साक्ष्य पेश करके उस सम्पूर्ण संदाय के जो प्रतिवादियों के पूर्व-हिताधिकारी द्वारा प्राप्त किया गया है, तथ्य को साबित करना चाहता है । यदि आक्षेपित आदेश का संपूर्ण रूप से परिशीलन किया जाए तो इससे स्पष्ट रूप से यह प्रकट होता है कि विद्वान् निचले न्यायालय आवेदन का विनिश्चय करने में स्वत: भ्रमित हुआ है क्योंकि विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित संपूर्ण निष्कर्ष तारीख 26 फरवरी, 1994 के करार से जिसकी फोटो प्रति पहले से ही मौजूद है, संबंधित हैं । निस्संदेह यदि वादी तारीख 26 फरवरी, 1994 की करार की अन्तर्वस्तु को साबित करने के लिए आशयित था तो उसे आवेदन के समर्थन में यह कहना चाहिए था कि इसकी मूल प्रति कहीं खो गई है और यह नहीं मिल रही है और इसी कारण से उसने अभिलेख पर इसकी फोटो प्रति पेश की है । तथापि, जैसी कि ऊपर चर्चा की गई है, वर्तमान मामले में वादी द्वारा यह अनुरोध किया गया है कि तारीख 25 अगस्त, 1994 के करार की जिसकी मूल प्रति खो गई है, अन्तर्वस्तु को साबित करने के लिए अनुज्ञात किया जाए । यह विवादित नहीं है कि वादी ने अपने वादपत्र में विनिर्दिष्ट रूप से यह प्रकथन किया है कि प्रतिवादियों की पूर्व-हिताधिकारी तारीख 26 फरवरी, 1994 और तारीख 25 अगस्त, 1994 के करारों द्वारा वादी के हक में वाद-संपत्ति को विक्रीत करने के लिए तैयार हुई थी और उसने तारीख 25 अगस्त, 1994 के विक्रय करार द्वारा संपूर्ण विक्रय प्रतिफल अर्थात् संपूर्ण संदाय प्राप्त कर लिया था । यद्यपि वादी द्वारा वादपत्र में किए गए उपर्युक्त प्रकथन को प्रतिवादियों द्वारा लिखित कथन में नकारा गया है तथापि, यह नहीं कहा जा सकता कि वादी द्वारा यह अभिवाक् अधिनियम की धारा 63/65 के अधीन आवेदन फाइल करते समय असंगत रूप से किया गया था । इस बात

पर कोई विवाद नहीं है कि वादी ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 63/65 के अधीन आवेदन फाइल करते समय यह विनिर्दिष्ट कथन नहीं किया है कि तारीख 25 अगस्त, 1994 का मूल करार कहीं खो गया है या नष्ट हो गया है और वादी किसी विशिष्ट व्यक्ति की परीक्षा कराकर उसकी अन्तर्वस्तु को साबित करना चाहता है तथापि न्यायालय के मतानुसार आवेदन खारिज करने के लिए यह एक आधार नहीं हो सकता क्योंकि अंतत: वह विधि के अनुसार द्वितीयिक साक्ष्य पेश करके इस दस्तावेज को साबित करना चाहता है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 उन प्रास्थितियों/दशाओं के बारे में उपबंध करती है जिनके अधीन दस्तावेजों से संबंधित द्वितीयिक साक्ष्य, दस्तावेजों की विद्यमानता, दशा या अन्तर्वस्तु को साबित करने के लिए पेश किया जा सकता है । यदि धारा 65 का सम्पूर्णत: परिशीलन किया जाए तो इससे यह प्रकट होता है कि द्वितीयिक साक्ष्य तब पेश किया जा सकता है जब द्वितीयिक साक्ष्य द्वारा पेश किए जाने के लिए आशयित दस्तावेजों की मूल प्रति नष्ट हो गई है या खो गई है अथवा जब पक्षकार इसकी अन्तर्वस्तु के बारे में साक्ष्य देने के लिए किसी अन्य कारण से जो उसके अपने दोष या असावधानी के कारण उत्पन्न नहीं हुआ है, युक्तियुक्त अवधि में इसे पेश करना चाहता है । ऐसे पक्षकार से जो द्वितीयिक साक्ष्य पेश करना चाहता है, यह अपेक्षित है कि वह प्राथमिक साक्ष्य को पेश न करने के लिए कारण साबित करे । जब तक यह साबित नहीं हो जाता है कि मूल दस्तावेज खो गया है या नष्ट हो गया है या ऐसे दस्तावेज का प्रयोग किए जाने वाले पक्षकार ने इस दस्तावेज को जानबूझकर रोक रखा है तब ऐसे दस्तावेज के संबंध में द्वितीयिक साक्ष्य पेश नहीं किया जा सकता । यदि अन्य तथ्यों की उपेक्षा की जाए तो भी यह विवादित नहीं है कि साक्ष्य आरंभ होना है और सभी दशाओं में प्रतिवादी को वादी द्वारा परीक्षा कराए जाने वाले व्यक्ति की, यदि कोई हो, प्रतिपरीक्षा करने के लिए एक अवसर दिया जाना चाहिए जिससे कि वह द्वितीयिक साक्ष्य द्वारा तारीख 25 अगस्त, 1994 के करार की अन्तर्वस्तु को साबित कर सके । यद्यपि द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने के लिए अनुज्ञा की ईप्सा करने हेतु जैसा कि अधिनियम की धारा 63/65 के अधीन आवेदन फाइल करने के लिए यथा उपबंधित है, कोई परिसीमा नहीं है

और संभवत: यह किसी भी प्रक्रम पर फाइल किया जा सकता है तथापि, यह न्यायालय इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकता कि वर्तमान मामले में विवाद्यक वर्ष, 2014 में विरचित किए गए हैं जबकि वर्तमान आवेदन वर्ष, 2018 में फाइल किया गया है और यह तथ्य निश्चित रूप से प्रतिवादियों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेल श्री ए. के. शर्मा की इस दलील से सहमत होने के लिए न्यायालय को आबद्ध करता है कि वादी कार्यवाहियों को विलंबित करने का प्रयास कर रहा है । परिणामत: उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए वर्तमान याचिका प्रतिवादियों को 15,000/- रुपए की धनराशि हर्जाने के रूप में संदाय करने के अध्यधीन मंजूर की जाती है । विद्वान् सिविल न्यायाधीश, न्यायालय सं. 2, नालगढ़, जिला सोलन, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख 23 अगस्त, 2018 को पारित आक्षेपित आदेश अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । यह भी स्पष्ट किया जाता है कि इस मामले में संगणित हर्जाने के संदाय के समय तक वादी को द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने का अवसर नहीं दिया जाएगा । (पैरा 6, 7, 8, 10 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	2015 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 6271 = (2016) 16 एस. सी. सी. 483 : **राकेश मोहिन्द्रा** बनाम **अनीता बेरी और अन्य** ।	9

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2018 की सी. एम. पी. एम. ओ. सं. 457.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री रोमेश वर्मा

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री ए. के. शर्मा

न्यायमूर्ति संदीप शर्मा – याची ने विद्वान् सिविल न्यायाधीश, न्यायालय सं. 2, नालगढ़, जिला सोलन, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख

23 अगस्त, 2018 को पारित उस आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर यह प्रकीर्ण याचिका फाइल की है जिसके द्वारा याची (जिसे आगे 'वादी' कहा गया है) द्वारा भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 63/65 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को जिसमें तारीख 25 अगस्त, 1994 के करार की अन्तर्वस्तु को साबित करने के लिए द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने के लिए अनुमति हेतु अनुरोध किया गया था, खारिज किया गया है । अत: वादी ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान कार्यवाहियां फाइल की हैं जिसमें उसने ऊपर निर्दिष्ट आक्षेपित आदेश को अपास्त करने और साक्ष्य अधिनियम की धारा 63-65 के अधीन फाइल किए गए उसके आवेदन को मंजूर करने के लिए अनुरोध किया है ।

2. आवश्यक तथ्य जो अभिलेख पर मौजूद हैं, इस प्रकार हैं कि वादी ने प्रत्यर्थियों (जिन्हें आगे 'प्रतिवादीगण' कहा गया है) के विरुद्ध करार के विनिर्दिष्ट पालन द्वारा कब्जे के लिए और निषेधात्मक व्यादेश के लिए वाद फाइल किया था जिसमें उसने ये प्रकथन किए थे कि प्रतिवादीगण की पूर्व-हिताधिकारी अर्थात् श्रीमती द्रोपदी विधवा श्री टेहर पुत्र श्री साधू ने तारीख 26 फरवरी, 1994 और तारीख 25 अगस्त, 1994 को विक्रय करार किया था । वादी के अनुसार प्रतिवादीगण ने तारीख 25 अगस्त, 1994 के विक्रय करार द्वारा सम्पूर्ण संदाय (प्रतिफल) प्राप्त कर लिया था और उन्होंने सम्पूर्ण संदाय प्राप्त करने के पश्चात् स्थल पर वाद संपत्ति के कब्जे का परिदान कर दिया था । चूंकि प्रतिवादी सं. 1 से 3 को संपत्ति जो करारों की विषयवस्तु है और जिसे ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, विरासत में मिली थी इसलिए विरासत का नामांतरण प्रतिवादी सं. 1 से 3 के नाम में मंजूर किया गया था । वादी ने करार के अपने भाग के पालन के लिए प्रतिवादीगण को सूचनाएं जारी की थीं तथापि, चूंकि वे अपने पूर्व-हिताधिकारी द्वारा निष्पादित विक्रय करारों के बावजूद वादी के हक में अपने अंशों का विक्रय विलेख निष्पादित करने में विफल रहे इसलिए वादी ने प्रतिवादियों के विरुद्ध ऊपर निर्दिष्ट रूप में वाद संस्थित किया ।

3. प्रतिवादीगण ने लिखित कथन फाइल करके विनिर्दिष्ट रूप से अपने पूर्व-हिताधिकारी द्वारा तारीख 6 फरवरी, 1994 और तारीख 25 अगस्त, 1994 के विक्रय करारों, यदि कोई हों, के निष्पादन के तथ्य से इनकार किया । प्रतिवादीगण ने इस बात से भी इनकार किया कि उनके पूर्व-हिताधिकारी द्वारा वादी के साथ किए गए अभिकथित विक्रय करारों, यदि कोई हों, के निबंधनों में धन प्राप्त किया गया था ।

4. दोनों पक्षों द्वारा पेश किए गए अभिवचनों के आधार पर वर्ष 2014 में विवाद्यक विरचित किए गए थे तथापि, मामले में साक्ष्य अभी भी लिया जाना है जैसा कि दोनों पक्षकारों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेलों द्वारा ऋजुतापूर्वक बताया गया है । विद्वान् निचले न्यायालय के समक्ष विचारण के लंबन के दौरान वादी की ओर से साक्ष्य अधिनियम की धारा 63/65 के अधीन एक आवेदन फाइल किया गया जिसमें उसने तारीख 25 अगस्त, 1994 के विक्रय करार द्वारा निष्पादक अर्थात् प्रतिवादीगण के पूर्व-हिताधिकारी को किए गए पूर्ण संदाय से संबंधित तथ्य को साबित करने के लिए द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने की अनुमति मांगी । प्रतिवादीगण द्वारा उक्त उपर्युक्त आवेदन का प्रबल रूप से विरोध किया गया था और उन्होंने यह दावा किया कि इस विलंबित प्रक्रम पर फाइल किया गया आवेदन मंजूर नहीं किया जा सकता । प्रतिवादीगण ने यह भी प्रकथन किया कि इसके अतिरिक्त ऐसा कोई विनिर्दिष्ट मामला नहीं बनता है जिसके आधार पर न्यायालय, अधिनियम की धारा 63/65 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को मंजूर करते हुए इस मामले के वादी को द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने के लिए अनुज्ञात करे ।

5. विद्वान् निचले न्यायालय ने संबंधित पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर पेश की गई सामग्री के आधार पर वादी द्वारा फाइल किए गए आवेदन को खारिज कर दिया जिसके परिणामस्वरूप वादी ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान कार्यवाहियां फाइल करके इस न्यायालय के समक्ष समावेदन किया जिसमें उसने आक्षेपित आदेश को अपास्त करने और उक्त आवेदन को मंजूर करने के लिए अनुरोध किया है ।

6. पक्षकारों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेलों को सुनने और विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश को पारित करने में दिए गए कारणों और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन करने के पश्चात् यह न्यायालय वादी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेल श्री रोमेश वर्मा की इस दलील से सहमत है कि निचले न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करने में गलती की है क्योंकि साक्ष्य अधिनियम की धारा 63/65 के अधीन फाइल किए गए आवेदन का, जो वादी द्वारा उपाबंध-पी-4 के रूप में फाइल किया गया है, सतर्कतापूर्वक परिशीलन करने मात्र से यह कहीं भी स्पष्ट नहीं होता है कि यह तारीख 26 फरवरी, 1994 की करार की फोटो प्रति जो पहले से ही अभिलेख पर है, साबित करने के लिए आशयित है और इसके बजाय वादी ने ऊपर निर्दिष्ट आवेदन द्वारा न्यायालय से तारीख 25 अगस्त, 1994 के करार की जिसके बारे में यह अभिकथित किया गया है कि यह प्रतिवादियों के पूर्व-हिताधिकारी द्वारा निष्पादित किया गया है, अन्तर्वस्तु को साबित करने के लिए अनुमति मांगी है । संभवत: वादी द्वितीयिक साक्ष्य पेश करके उस सम्पूर्ण संदाय के जो प्रतिवादियों के पूर्व-हिताधिकारी द्वारा प्राप्त किया गया है, तथ्य को साबित करना चाहता है । यदि आक्षेपित आदेश का संपूर्ण रूप से परिशीलन किया जाए तो इससे स्पष्ट रूप से यह प्रकट होता है कि विद्वान् निचले न्यायालय आवेदन का विनिश्चय करने में स्वत: भ्रमित हुआ है क्योंकि विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित संपूर्ण निष्कर्ष तारीख 26 फरवरी, 1994 के करार से जिसकी फोटो प्रति पहले से ही मौजूद है, संबंधित हैं । निस्संदेह यदि वादी तारीख 26 फरवरी, 1994 की करार की अन्तर्वस्तु को साबित करने के लिए आशयित था तो उसे आवेदन के समर्थन में यह कहना चाहिए था कि इसकी मूल प्रति कहीं खो गई है और यह नहीं मिल रही है और इसी कारण से उसने अभिलेख पर इसकी फोटो प्रति पेश की है ।

7. तथापि, जैसी कि ऊपर चर्चा की गई है, वर्तमान मामले में वादी द्वारा यह अनुरोध किया गया है कि तारीख 25 अगस्त, 1994 के करार की जिसकी मूल प्रति खो गई है, अन्तर्वस्तु को सबित करने के लिए अनुज्ञात किया जाए । यह विवादित नहीं है कि वादी ने अपने वादपत्र में

विनिर्दिष्ट रूप से यह प्रकथन किया है कि प्रतिवादियों की पूर्व-हिताधिकारी तारीख 26 फरवरी, 1994 और तारीख 25 अगस्त, 1994 के करारों द्वारा वादी के हक में वाद-संपत्ति को विक्रीत करने के लिए तैयार हुई थी और उसने तारीख 25 अगस्त, 1994 के विक्रय करार द्वारा संपूर्ण विक्रय प्रतिफल अर्थात् संपूर्ण संदाय प्राप्त कर लिया था । यद्यपि वादी द्वारा वादपत्र में किए गए उपर्युक्त प्रकथन को प्रतिवादियों द्वारा लिखित कथन में नकारा गया है तथापि, यह नहीं कहा जा सकता कि वादी द्वारा यह अभिवाक् अधिनियम की धारा 63/65 के अधीन आवेदन फाइल करते समय असंगत रूप से किया गया था । इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि वादी ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 63/65 के अधीन आवेदन फाइल करते समय यह विनिर्दिष्ट कथन नहीं किया है कि तारीख 25 अगस्त, 1994 का मूल करार कहीं खो गया है या नष्ट हो गया है और वादी किसी विशिष्ट व्यक्ति की परीक्षा कराकर उसकी अन्तर्वस्तु को साबित करना चाहता है तथापि, मेरे मतानुसार आवेदन खारिज करने के लिए यह एक आधार नहीं हो सकता क्योंकि अंतत: वह विधि के अनुसार द्वितीयिक साक्ष्य पेश करके इस दस्तावेज को साबित करना चाहता है ।

8. साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 उन प्रास्थितियों/दशाओं के बारे में उपबंध करती है जिनके अधीन दस्तावेजों से संबंधित द्वितीयिक साक्ष्य, दस्तावेजों की विद्यमानता, दशा या अन्तर्वस्तु को साबित करने के लिए पेश किया जा सकता है । यदि धारा 65 का सम्पूर्णत: परिशीलन किया जाए तो इससे यह प्रकट होता है कि द्वितीयक साक्ष्य तब पेश किया जा सकता है जब द्वितीयिक साक्ष्य द्वारा पेश किए जाने के लिए आशयित दस्तावेजों की मूल प्रति नष्ट हो गई है या खो गई है अथवा जब पक्षकार इसकी अन्तर्वस्तु के बारे में साक्ष्य देने के लिए किसी अन्य कारण से जो उसके अपने दोष या असावधानी के कारण उत्पन्न नहीं हुआ है, युक्तियुक्त अवधि में इसे पेश करना चाहता है । ऐसे पक्षकार से जो द्वितीयिक साक्ष्य पेश करना चाहता है, यह अपेक्षित है कि वह प्राथमिक साक्ष्य को पेश न करने के लिए कारण साबित करे । जब तक यह साबित नहीं हो जाता है कि मूल दस्तावेज खो गया है या नष्ट हो गया है या ऐसे दस्तावेज का प्रयोग किए जाने वाले पक्षकार ने

इस दस्तावेज को जानबूझकर रोक रखा है तब ऐसे दस्तावेज के संबंध में द्वितीयिक साक्ष्य पेश नहीं किया जा सकता ।

9. इस संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **राकेश मोहिन्द्रा** बनाम **अनीता बेरी और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया जा सकता है जिसमें इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "13. सामान्य नियम के रूप में दस्तावेज प्राथमिक साक्ष्य पेश करके साबित किए जाते हैं । साक्ष्य अधिनियम की धारा 64 यह उपबंध करती है कि दस्तावेज प्राथमिक साक्ष्य द्वारा साबित किए जाने चाहिए सिवाय उन मामलों के जिनके बारे में साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 में उल्लेख किया गया है । प्राथमिक साक्ष्य के अभाव में दस्तावेज द्वितीयिक साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है जैसा कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 के अधीन यथा अनुध्यात है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 63 इस प्रकार है –
>
> '63. **द्वितीयिक साक्ष्य** – द्वितीयिक साक्ष्य से अभिप्रेत है और उसके अन्तर्गत आते हैं –
>
> (1) एतस्मिनपश्चात् अन्तर्विष्ट उपबंधों के अधीन दी गई प्रमाणित प्रतियां ;
>
> (2) मूल से ऐसी यान्त्रिक प्रक्रियाओं द्वारा, जो प्रक्रियाएं स्वयं ही प्रति की शुद्धता सुनिश्चित करती हैं, बनाई गई प्रतियां तथा ऐसी प्रतियों से तुलना की हुई प्रतिलिपियां ;
>
> (3) मूल से बनाई गई या तुलना की गई प्रतियां ;
>
> (4) उन पक्षकारों के विरुद्ध, जिन्होंने उन्हें निष्पादित नहीं किया है, दस्तावेजों के प्रतिलेख ;
>
> (5) किसी दस्तावेज की अन्तर्वस्तु या उस व्यक्ति

---

[1] 2015 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 6271 = (2016) 16 एस. सी. सी. 483.

द्वारा, जिसने स्वयं उसे देखा है, दिया हुआ मौखिक वृत्तांत ।'

"14. धारा 65 उन दशाओं के बारे में उपबंध करती है जिनके अधीन दस्तावेजों से संबंधित द्वितीयिक साक्ष्य दस्तावेजों की विद्यमानता, दशा या अन्तर्वस्तु को साबित करने के लिए पेश किया जा सकता है । अधिनियम की धारा 65 के सही मूल्यांकन के लिए इसे यहां उद्धृत किया जा रहा है –

'65. **अवस्थाएं जिनमें दस्तावेजों के संबंध में द्वितीयिक साक्ष्य दिया जा सकेगा** – किसी दस्तावेज के अस्तित्व, दशा या अन्तर्वस्तु का द्वितीयिक साक्ष्य निम्नलिखित अवस्थाओं में दिया जा सकेगा –

(क) जबकि यह दर्शित कर दिया जाए या प्रतीत होता हो कि मूल ऐसे व्यक्ति के कब्जे में या शक्त्यधीन है –

जिसके विरुद्ध उस दस्तावेज का साबित किया जाना ईप्सित है, अथवा

जो न्यायालय की आदेशिका की पहुंच के बाहर है, या ऐसी आदेशिका के अध्यधीन नहीं है, अथवा

जो उसे पेश करने के लिए वैध रूप से आबद्ध है,

और जब कि ऐसा व्यक्ति धारा 66 में वर्णित सूचना के पश्चात् उसे पेश नहीं करता है,

(ख) जबकि मूल के अस्तित्व, दशा या अन्तर्वस्तु की उस व्यक्ति द्वारा, जिसके विरुद्ध उसे साबित किया जाना है या उसके हित प्रतिनिधि द्वारा लिखित रूप से स्वीकृत किया जाना साबित कर दिया गया है,

(ग) जबकि मूल नष्ट हो गया है, या खो गया है अथवा जबकि उसकी अन्तर्वस्तु का साक्ष्य देने की प्रस्थापना करने वाला पक्षकार अपने स्वयं के व्यतिक्रम

या उपेक्षा से अनुद्भूत अन्य किसी कारण से उसे युक्तियुक्त समय में पेश नहीं कर सकता,

(घ) जबकि मूल इस प्रकृति का है कि उसे आसानी से स्थानांतरित नहीं किया जा सकता,

(ङ) जबकि मूल धारा 74 के अर्थ के अन्तर्गत एक लोक दस्तावेज है,

(च) जबकि मूल ऐसी दस्तावेज है जिसकी प्रमाणित प्रति का साक्ष्य में दिया जाना इस अधिनियम द्वारा या भारत में प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अनुज्ञात है,

(छ) जबकि मूल ऐसे अनेक लेखाओं या अन्य दस्तावेजों से गठित है जिनकी न्यायालय में सुविधापूर्वक परीक्षा नहीं की जा सकती और वह तथ्य जिसे साबित किया जाना है, सम्पूर्ण संग्रह का साधारण परिणाम है ।

अवस्थाओं (क), (ग) और (घ) में दस्तावेजों की अन्तर्वस्तु का कोई भी द्वितीयिक साक्ष्य ग्राह्य है ।

अवस्था (ख) में वह लिखित स्वीकृति ग्राह्य है ।

अवस्था (ङ) या (च) में दस्तावेज की प्रमाणित प्रति ग्राह्य है, किन्तु अन्य किसी भी प्रकार का द्वितीयिक साक्ष्य ग्राह्य नहीं है ।

अवस्था (छ) में दस्तावेजों के साधारण परिणाम का साक्ष्य ऐसे किसी व्यक्ति द्वारा दिया जा सकेगा जिसने उनकी परीक्षा की है और जो ऐसी दस्तावेजों की परीक्षा करने में कुशल है ।"

"15. द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने के लिए पूर्ववर्ती शर्तें ये हैं कि ऐसे मूल दस्तावेज, मूल दस्तावेज का अवलंब लेने वाले पक्षकार द्वारा अपने समस्त प्रयासों के बावजूद पेश नहीं किए जा सकते क्योंकि वह ऐसी परिस्थितियों के अधीन जो उसके नियंत्रण से बाहर हैं, पेश करने में असमर्थ है । ऐसे पक्षकार को जो द्वितीयिक

साक्ष्य पेश करना चाहता है, प्राथमिक साक्ष्य को पेश न करने के लिए कारण साबित करने चाहिए । जब तक यह साबित नहीं हो जाता है कि मूल दस्तावेज खो गया है या नष्ट हो गया है या उस पक्षकार द्वारा जो उसे प्रयुक्त किए जाने के लिए आशयित है, जानबूझकर उसे पेश नहीं किया जा रहा है, ऐसे दस्तावेज के संबंध में द्वितीयिक साक्ष्य स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

16. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में अनीता बेरी **बनाम** राकेश मोहिन्द्रा ए. आई. आर. 2014 एस. पी. 63 वाले मामले का इस प्रकार मत व्यक्त करते हुए अनुसरण किया है –

> '9. लिखित कथन में प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/बी के संबंध में कोई प्रकथन नहीं किया गया है । लिखित कथन तारीख 19 फरवरी, 2007 को फाइल किया गया था । डी. डब्ल्यू. 2/बी एक फोटोप्रति है । वादी ने एक रजिस्ट्रीकृत विल के आधार पर संपत्ति में हकदारी का दावा किया है जो वर्ष 1984 में उनके हक में निष्पादित की गई है । प्रतिवादी के लिए यह साबित करना आवश्यक था कि तारीख 24 अगस्त, 1982 का दस्तावेज किस रीति में निष्पादित किया गया था । प्रतिवादी ने ए. डब्ल्यू. 1 के रूप में पेश होकर अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि उसने अपने शपथपत्र प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 1/ए में के सिवाय किसी अन्य दस्तावेज में यह उल्लेख नहीं किया है कि घोषणा पत्र उसकी उपस्थिति में न्यायमूर्ति स्वर्गीय श्री टेक चन्द द्वारा निष्पादित किया गया था । डी. डब्ल्यू. 2 के कथन से यह साबित नहीं होता है कि प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए कभी भी विद्यमान था । डी. डब्ल्यू. 2 श्री गुरुचरण सिंह ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि वह प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/बी अपने साथ नहीं लाया है । उसने यह भी स्वीकार किया है कि प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/बी पर पी. सी. दांडा के हस्ताक्षर पठनीय नहीं हैं । उसने स्वेच्छया से यह कहा कि यह पठनीय नहीं है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अधीन आवेदन को मंजूर

करते समय मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य का विशेषतया डी. डब्ल्यू. 2 गुरुचरण सिंह और डी. डब्ल्यू. 3 दीपक नारंग के कथनों का पूर्ण रूप से गलत परिशीलन किया है । आवेदक भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 65 के उपबंधों का अनुपालन करने में पूर्ण रूप से विफल रहा है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालने में त्रुटि की है कि दस्तावेज प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/बी को पेश करने के लिए पर्याप्त कार्रवाई की है ।'

"17. उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय द्वारा जे. यशोदा **बनाम** श्रीमती के. शोभा रानी ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1721 और एच. सिद्दीकी (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि **बनाम** के. रामालिंगम ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1492 वाले मामलों के निर्णयों का अनुसरण करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि प्रतिवादी मूल दस्तावेजों की विद्यमानता और निष्पादन को साबित करने में विफल रहा है और साथ ही साथ यह साबित करने में विफल रहा है कि उसने कभी भी तारीख 24 अगस्त, 1982 के दावा त्यागपत्र की मूल प्रति प्राधिकारियों के सुपुर्द की थी । अत: उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने के लिए कोई मामला नहीं बनता है ।

18. साक्षी डी. डब्ल्यू. 2 ने जो डी. ई. ओ. अम्बाला के कार्यालय में उच्च श्रेणी लिपिक के रूप में कार्य कर रहा है, मूल जी. एल. आर. रजिस्टर पेश किया है । उसने दावा त्यागपत्र की फोटो प्रति सहित कागज के चार शीट (पत्रक) पेश किए हैं । उसने यह कथन किया है कि मूल दस्तावेज डी. ई. ओ. की अभिरक्षा में रहते हैं । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में जो अभिसाक्ष्य दिया है उसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है –

'**** वादी सं. 2 के अधिवक्ता श्री एम. एस. चन्देल द्वारा – मैं अभिलेख के साथ संपूर्ण फाइल साथ लाया हूं । मैं फाइल पर के केवल उन दस्तावेजों को साथ लाया हूं जिन्हें समन किया गया था । जी. एल. आर. प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ए के

अनुसार आज की तारीख में इसमें राकेश मोहिन्द्रा का नाम अंकित नहीं है । उसका नाम तारीख 29 अगस्त, 2011 के आदेश के अनुसार निरसित कर दिया गया था । मैं प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2 की मूल प्रति नहीं लाया हूं । यह सही है कि प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/डी. पर पी. सी. दांडा के हस्ताक्षर नहीं हैं । स्वयं कहा कि ये पठनीय नहीं हैं । प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/सी पर हस्ताक्षर हैं किन्तु ये पठनीय नहीं है । उक्त दस्तावेज पर सत्यापन अधिकारी के हस्ताक्षर पठनीय नहीं हैं क्योंकि दस्तावेज आर्द्र हो गया है । मैं यह नहीं कह सकता कि इन दस्तावेजों पर किसके हस्ताक्षर हैं । प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/ई पर अभिसाक्षी (डिपोनेंट) के हस्ताक्षर पानी के कारण पठनीय प्रतीत नहीं होते हैं । प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/एफ पर भी अस्पष्ट हस्ताक्षर हैं और अंतिम पृष्ठ पर केवल टेक चन्द पठनीय है । यह कहना सही नहीं है कि अंतिम पृष्ठ पर सत्यापन करने वाले अधिकारी के हस्ताक्षर मौजूद नहीं हैं । स्वयं कहा ये धूमिल हो गए हैं तथापि, पठनीय नहीं है । अंतिम कागज पर मोहर भी पठनीय नहीं है । प्रथम और द्वितीय पृष्ठ पर कोई मोहर नहीं है । मेरी जानकारी के अनुसार कोई कुटुम्बीय समझौता नहीं है तथापि, कुटुम्बीय समझौते की पावती है । मुझे यह पता नहीं है कि राकेश मोहिन्द्रा के कितने भाई हैं । यह कहना सही है कि प्रदर्श डी. डब्ल्यू. 2/एच की मूल प्रति पर श्री अभय कुमार के हस्ताक्षर मौजूद नहीं हैं । मुझे यह पता नहीं है कि क्या श्री अभय कुमार सूद और राकेश मोहिन्द्रा आपस में सगे भाई हैं । उपर्युक्त वर्णित दस्तावेज न तो मेरे सामने निष्पादत किए गए हैं और न ही तैयार किए गए हैं । यह कहना सही नहीं है कि ऊपर वर्णित दस्तावेज कूटरचित है । यह कहना भी सही नहीं है कि इसी कारण से मैं संपूर्ण फाइल साथ नहीं लाया हूं ।'

19. एहतशान अली **बनाम** जमना प्रसाद ए. आई. आर. 1922 पी. सी. 56 वाले मामले में प्राथमिक साक्ष्य नष्ट हो जाने की दशा में द्वितीयिक साक्ष्य की ग्राह्यता पर विचार करने के लिए समान

प्रश्न उद्भूत हुआ था । इस मामले में लार्ड फिलीमोर ने अपने निर्णय में इस प्रकार मत व्यक्त किया था –

> 'निस्संदेह इस बात की पूरी संभावना नहीं है कि यह विलेख खो गया होगा तथापि, सामान्य मामलों में जहां साक्षी जिसकी अभिरक्षा में विलेख खोना चाहिए, इसके खो जाने के बारे में अभिसाक्ष्य देता है वहां जब तक कि उसके द्वारा झूठा साक्ष्य देने के लिए किसी हेतुक को साबित नहीं किया जाता है, उसका साक्ष्य विलेख के द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने के लिए पर्याप्त होने के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए ।'

"20. यह सुस्थापित है कि जहां कोई पक्षकार द्वितीयिक साक्ष्य पेश करना चाहता है वहां वह इस बात के दायित्वाधीन है कि वह न्यायालय में पेश किए गए दस्तावेज का प्रोबेटिव मूल्य की अथवा उसकी अन्तर्वस्तु की परीक्षा करे और द्वितीयिक साक्ष्य के रूप में किसी दस्तावेज की ग्राह्यता के प्रश्न को विनिश्चित करे । इसके साथ ही साथ पक्षकार को द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने के लिए अपने अधिकार को साबित करने के लिए तथ्यात्मक आधार अधिकथित करने चाहिए जहां मूल दस्तावेज पेश नहीं किया जा सकता । समान रूप में यह भी सुस्थापित है कि न तो साक्ष्य में किसी दस्तावेज को ग्रहण किया जाना इसको साबित करने के बराबर है और न ही किसी दस्तावेज के प्रदर्श से अभिमुक्ति देने मात्र से यह साबित माना जाता है जिसे अन्यथा विधि के अनुसार साबित किए जाने की आवश्यकता है ।"

10. यदि अन्य तथ्यों की उपेक्षा की जाए तो भी यह विवादित नहीं है कि साक्ष्य आरंभ होना है और सभी दशाओं में प्रतिवादी को वादी द्वारा परीक्षा कराए जाने वाले व्यक्ति की, यदि कोई हो, प्रतिपरीक्षा करने के लिए एक अवसर दिया जाना चाहिए जिससे कि वह द्वितीयिक साक्ष्य द्वारा तारीख 25 अगस्त, 1994 के करार की अन्तर्वस्तु को साबित कर सके । यद्यपि द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने के लिए अनुज्ञा की ईप्सा करने हेतु जैसा कि अधिनियम की धारा 63/65 के अधीन

आवेदन फाइल करने के लिए यथा उपबंधित है, कोई परिसीमा नहीं है और संभवत: यह किसी भी प्रक्रम पर फाइल किया जा सकता है तथापि, यह न्यायालय इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकता कि वर्तमान मामले में विवाद्यक वर्ष, 2014 में विरचित किए गए हैं जबकि वर्तमान आवेदन वर्ष, 2018 में फाइल किया गया है और यह तथ्य निश्चित रूप से प्रतिवादियों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेल श्री ए. के. शर्मा की इस दलील से सहमत होने के लिए न्यायालय को आबद्ध करता है कि वादी कार्यवाहियों को विलंबित करने का प्रयास कर रहा है ।

11. परिणामत: उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए वर्तमान याचिका प्रतिवादियों को 15,000/- रुपए की धनराशि हर्जाने के रूप में संदाय करने के अध्यधीन मंजूर की जाती है । विद्वान् सिविल न्यायाधीश, न्यायालय सं. 2, नालगढ़, जिला सोलन, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख 23 अगस्त, 2018 को पारित आक्षेपित आदेश अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । यह भी स्पष्ट किया जाता है कि इस मामले में संगणित हर्जाने के संदाय के समय तक वादी को द्वितीयिक साक्ष्य पेश करने का अवसर नहीं दिया जाएगा ।

12. पक्षकारों के उनके काउंसेलों के जरिए यह निदेश जाता है कि वे मामले में कार्यवाही कराने के लिए तारीख 11 जनवरी, 2019 को विद्वान् निचले न्यायालय के समक्ष उपस्थित हों ।

13. ऊपर किए गए किसी भी संप्रेक्षण को मामले के गुण-दोष पर कोई प्रभाव डालने वाला नहीं समझा जाएगा और उक्त संप्रेक्षण केवल इस याचिका के निपटान तक ही निर्बंधित माने जाएंगे । लंबित आवेदनों का भी, यदि कोई हों, निपटान किया जाता है ।

याचिका मंजूर की गई ।

मह.

छितरु

बनाम

पाल और एक अन्य

(2018 की सी. एम. पी. ओ. सं. 253)

तारीख 10 अप्रैल, 2019

न्यायमूर्ति अजय मोहन गोयल

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 73 – घोषणा और कब्जे के लिए वाद – विलंबित प्रक्रम अर्थात् बहस के प्रक्रम पर छह स्थगन लिए जाने के पश्चात् अंगुष्ठ छाप के मिलान के लिए आवेदन – सात वर्ष की अवधि तक उक्त आवेदन फाइल न करने के लिए कोई कारण उपदर्शित न किया जाना – उक्त उपबंध का प्रयोग मुकदमे में विलंब करने और मामले को लंबा खींचने के लिए एक उपकरण के रूप में अनुज्ञात नहीं किया जा सकता – अत: ऐसा आवेदन ठीक ही खारिज किया गया है ।

याचिका के न्यायनिर्णयन के लिए संक्षिप्त आवश्यक तथ्य इस प्रकार हैं कि याची-वादी (जिसे आगे 'वादी' के रूप में निर्दिष्ट किया गया है) ने प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों के विरुद्ध घोषणा, संयुक्त कब्जे और व्यादेश के लिए इस आशय का एक वाद फाइल किया था कि तारीख 28 जून, 1995 की विल अकृत और शून्य घोषित की जाए और वादी तथा प्रतिवादी सं. 1 को तारीख 4 जनवरी, 1986 की विल के आधार पर वाद भूमि में समान अंशधारकों के रूप में स्वामी होने की घोषणा की जाए । वाद वर्ष 2010 में फाइल किया गया था । वाद के लंबन के दौरान विलंबित प्रक्रम पर जब मामला बहस के प्रक्रम पर था और इसे वादी के अनुरोध पर छह बार स्थगित किया जा चुका था, वादी द्वारा विवादित विल और तारीख 4 जनवरी, 1986 की विल पर लगे स्वीकृत अंगुली/अंगुष्ठ छाप के साथ विक्रय विलेख पर मृतक सुन्दर की अंगुली/अंगुष्ठ लगी छाप से तुलना कराने के लिए भारतीय साक्ष्य

अधिनियम की धारा 73 के अधीन एक आवेदन फाइल किया गया था । यह आवेदन तारीख 15 सितंबर, 2017 का है । याची ने 2013 के सिविल वाद सं. 716 में फाइल किए गए 2018 के सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 171 में तारीख 27 अप्रैल, 2018 को पारित उस आदेश को आक्षेपित किया है जिसके द्वारा विद्वान् निचले न्यायालय ने याची-वादी द्वारा मृतक सुन्दर सिंह की अंगुली/अंगुष्ठ छाप के मिलान के लिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को खारिज किया है । उक्त मिलान विवादित विल पर की छाप से स्वीकृत दस्तावेजों पर लगी अंगुली/अंगुष्ठ छाप से किया जाना तात्पर्यित था । याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह विवादित नहीं है कि प्रश्नगत वाद वर्ष 2010 में फाइल किया गया था । याची विद्वान् निचले न्यायालय के समक्ष वादी है । उसने यह अभिकथन किया है कि प्रतिवादियों के हक में तात्पर्यित विल एक कूटरचित विल है । अत: उक्त तथ्य को साबित करने का भार स्पष्टतया याची-वादी के ऊपर जाता है । याची को उस प्रक्रम पर भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 के अधीन आवेदन फाइल करने से किसी ने नहीं रोका था जब वादी विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष अपना साक्ष्य प्रस्तुत कर रहा था । यह भी विवादित नहीं है, जैसा कि आक्षेपित आदेश में उल्लिखित है, कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 के अधीन आवेदन याची-वादी द्वारा पहले ही छह स्थगन लिए जाने और विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा वादी के हक में मंजूर किए जाने के बाद फाइल किया गया था और जब मुख्य वाद गुण-दोष के आधार पर निपटान के स्तर पर था । यह बात स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित करती है कि उक्त आवेदन मात्र विलंब करने के आशय से फाइल किया गया था । आवेदन के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि आवेदन में ऐसा कोई भी उल्लेख नहीं है कि याची को विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 के अधीन आवेदन फाइल करने से लगभग 7 वर्ष तक किसी चीज ने रोका हो । याची के विद्वान् काउंसेल की इस दलील में कि प्रक्रियात्मक विधि न्याय को अग्रसर करने के लिए कहती है, मामले के

तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए कोई बल नहीं है क्योंकि प्रक्रिया को किसी पक्षकार द्वारा किसी मुकदमेदारी को विलंबित करने या उसे लंबा खींचने के लिए एक उपकरण के रूप में प्रयुक्त किए जाने के लिए अनुज्ञात नहीं करती । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए चूंकि इस न्यायालय को आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता प्रतीत नहीं होती है और न ही इसमें कोई अनियमितता प्रतीत होती है, इसलिए यह याचिका बलहीन होने के कारण खारिज की जाती है । पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों के अनुरोध पर यह स्पष्ट किया जाता है कि विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा वाद गुण-दोष के आधार पर विनिश्चित किया जाएगा और निचला न्यायालय इस आदेश में की गई किसी मताभिव्यक्ति अथवा विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश से प्रभावित नहीं होगा । (पैरा 8, 9 और 10)

आरंभिक (सिविल) अधिकारिता : 2018 की सी. एम. पी. ओ. सं. 253.

भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 के अधीन फाइल किए गए आवेदन में तारीख 27 अप्रैल, 2018 को पारित आदेश के विरुद्ध याचिका ।

याची की ओर से श्री लवनीश कुमार

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री अजय चंदेल

न्यायमूर्ति अजय मोहन गोयल – याची ने 2013 के सिविल वाद सं. 716 में फाइल किए गए 2018 के सिविल प्रकीर्ण आवेदन सं. 171 में तारीख 27 अप्रैल, 2018 को पारित उस आदेश को आक्षेपित किया है जिसके द्वारा विद्वान् निचले न्यायालय ने याची-वादी द्वारा मृतक सुन्दर सिंह की अंगुली/अंगुष्ठ छाप के मिलान के लिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को खारिज किया है । उक्त मिलान विवादित विल पर की छाप से स्वीकृत दस्तावेजों पर लगी अंगुली/अंगुष्ठ छाप से किया जाना तात्पर्यित था ।

2. याचिका के न्यायनिर्णयन के लिए संक्षिप्त आवश्यक तथ्य इस प्रकार हैं कि याची-वादी (जिसे आगे 'वादी' के रूप में निर्दिष्ट किया गया

है) ने प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों के विरुद्ध घोषणा, संयुक्त कब्जे और व्यादेश के लिए इस आशय का एक वाद फाइल किया था कि तारीख 28 जून, 1995 की विल अकृत और शून्य घोषित की जाए और वादी तथा प्रतिवादी सं. 1 को तारीख 4 जनवरी, 1986 की विल के आधार पर वाद भूमि में समान अंशधारकों के रूप में स्वामी होने की घोषणा की जाए ।

3. वाद वर्ष 2010 में फाइल किया गया था । वाद के लंबन के दौरान विलंबित प्रक्रम पर जब मामला बहस के प्रक्रम पर था और इसे वादी के अनुरोध पर छह बार स्थगित किया जा चुका था, वादी द्वारा विवादित विल और तारीख 4 जनवरी, 1986 की विल पर लगे स्वीकृत अंगुली/अंगुष्ठ छाप के साथ विक्रय विलेख पर मृतक सुन्दर की अंगुली/अंगुष्ठ लगी छाप से तुलना कराने के लिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 के अधीन एक आवेदन फाइल किया गया था । यह आवेदन तारीख 15 सितंबर, 2017 का है ।

4. आवेदन में यह प्रकथन किया गया था कि आवेदक ने घोषणा के लिए और मृतक सुन्दर द्वारा अभिकथित रूप से निष्पादित तारीख 28 जून, 1975 की विल के रद्दकरण के लिए एक वाद फाइल किया था । तारीख 4 जनवरी, 1986 की विल पर और तारीख 28 जून, 1975 की विल पर लगी अंगुली/अंगुष्ठ छाप की तुलना करने पर अत्यधिक भिन्नता पाई गई थी । आवेदन में यह भी प्रकथन किया गया था कि मृतक सुन्दर गंभीर रूप से बीमार था और वह बिस्तर से नहीं उठ सकता था और वह चलने-फिरने की स्थिति में नहीं था और इसलिए वादी ने उपर्युक्त स्थिति का फायदा उठाया । आवेदक-वादी के अनुसार सुन्दर ने कभी भी विवादित विल निष्पादित नहीं की थी और इसलिए मामले के विनिश्चय के लिए यह आवश्यक था कि उस पर लगी अंगुली/अंगुष्ठ छाप का मिलान किया जाए ।

5. प्रत्यर्थी-लड़ने वाले प्रतिवादी द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर आवेदन का विरोध किया गया था कि आवेदन के पैरा 2 में निर्दिष्ट दस्तावेज पिछले 10 वर्षों से वादी के कब्जे में थे और आक्षेपाधीन विल के अनुप्रमाणन साक्षियों के कथन अभिलिखित किए जा

चुके थे और आवेदन मामले को विलंबित करने और प्रतिवादियों को परेशान करने के लिए फाइल किया गया था ।

6. विद्वान् निचले न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए आवेदन खारिज कर दिया कि लड़ने वाले प्रतिवादी के इस कथन में बल है कि आवेदन विलंबित प्रक्रम पर मामले को लंबा खींचने के आशय से फाइल किया गया था । विद्वान् न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वादी को आवेदन साक्ष्य पेश करते समय पूर्व में फाइल करना चाहिए था तथापि, उसने ऐसा नहीं किया । आवेदन उस प्रक्रम पर फाइल किया गया था जब मामला अंतिम बहस के लिए सूचीबद्ध था और इतना ही नहीं, पहले ही छह स्थगन लिए जाने के पश्चात् फाइल किया गया जो कि न्यायालय द्वारा बहस के लिए मंजूर किए गए थे । यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रश्नगत विल एक रजिस्ट्रीकृत विल है और वसीयतकर्ता की श्री आर. एन. शर्मा अधिवक्ता द्वारा सम्यक् रूप से पहचान की गई थी जो कि न्यायालय में डी. डब्ल्यू.-2 के रूप में उपस्थित हुआ था और उसने विनिर्दिष्ट रूप से यह कहा था कि वह सुन्दर को व्यक्तिगत रूप से जानता था क्योंकि सुन्दर उसके पड़ोस के गांव का था और आवेदन को विनिश्चित करते समय उस उक्त तथ्य पर विचार किया जाना आवश्यक था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने उक्त आधारों पर आवेदन खारिज कर दिया ।

7. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और आक्षेपित आदेश का और मामले के अभिलेख का भी परिशीलन किया ।

8. यह विवादित नहीं है कि प्रश्नगत वाद वर्ष 2010 में फाइल किया गया था । याची विद्वान् निचले न्यायालय के समक्ष वादी है । उसने यह अभिकथन किया है कि प्रतिवादियों के हक में तात्पर्यित विल एक कूटरचित विल है । अत: उक्त तथ्य को साबित करने का भार स्पष्टतया याची-वादी के ऊपर जाता है । याची को उस प्रक्रम पर भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 के अधीन आवेदन फाइल करने से किसी ने नहीं रोका था जब वादी विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष अपना साक्ष्य प्रस्तुत कर रहा था । यह भी विवादित नहीं है, जैसा कि आक्षेपित आदेश में उल्लिखित है, कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की

धारा 73 के अधीन आवेदन याची-वादी द्वारा पहले ही छह स्थगन लिए जाने और विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा वादी के हक में मंजूर किए जाने के बाद फाइल किया गया था और जब मुख्य वाद गुण-दोष के आधार पर निपटान के स्तर पर था । यह बात स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित करती है कि उक्त आवेदन मात्र विलंब करने के आशय से फाइल किया गया था ।

9. आवेदन के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि आवेदन में ऐसा कोई भी उल्लेख नहीं है कि याची को विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 के अधीन आवेदन फाइल करने से लगभग 7 वर्ष तक किसी चीज ने रोका हो । याची के विद्वान् काउंसेल की इस दलील में कि प्रक्रियात्मक विधि न्याय को अग्रसर करने के लिए कहती है, मामले के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए कोई बल नहीं है क्योंकि प्रक्रिया को किसी पक्षकार द्वारा किसी मुकदमेदारी को विलंबित करने या उसे लंबा खींचने के लिए एक उपकरण के रूप में प्रयुक्त किए जाने के लिए अनुज्ञात नहीं करती ।

10. मामले को इस दृष्टि से देखते हुए चूंकि इस न्यायालय को आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता प्रतीत नहीं होती है और न ही इसमें कोई अनियमितता प्रतीत होती है, इसलिए यह याचिका बलहीन होने के कारण खारिज की जाती है । पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों के अनुरोध पर यह स्पष्ट किया जाता है कि विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा वाद गुण-दोष के आधार पर विनिश्चित किया जाएगा और निचला न्यायालय इस आदेश में की गई किसी मताभिव्यक्ति अथवा विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश से प्रभावित नहीं होगा ।

11. याचिका का उपर्युक्त निबंधनों में निपटान किया जाता है और साथ ही साथ प्रकीर्ण आवेदनों, यदि कोई हों, का भी निपटान किया जाता है ।

याचिका खारिज की गई ।

महः

(2019) 2 सि. नि. प. 406 हिमाचल प्रदेश

लाल चंद

बनाम

ट्रस्ट प्रभ दयाल शाह मोती राम शाह और एक अन्य

(2017 की नियमित द्वितीय अपील सं. 302)

तारीख 17 अप्रैल, 2019

न्यायमूर्ति तरलोक सिंह चौहान

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 11(2) और 35 [सपठित भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 की धारा 47] – निष्पादन आवेदन – न्यास के हक़ में डिक्री – न्यास के सचिव द्वारा निष्पादन आवेदन पर हस्ताक्षर किया जाना – तीसरे पक्षकार द्वारा आक्षेप – विधिमान्यता – न्यास का सचिव न्यास के आवश्यक कार्यों के लिए न्यास द्वारा प्राधिकृत होने के आधार पर आंतरिक कार्य कर सकता है – अत: सचिव द्वारा निष्पादन आवेदन पर हस्ताक्षरों को अविधिमान्य नहीं कहा जा सकता ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 21, नियम 97, 99 और 100 – कब्जे की डिक्री के लिए निष्पादन आवेदन – तृतीय पक्षकार द्वारा परिसीमा के आधार पर आक्षेप – अपरिचित व्यक्ति या तृतीय पक्षकार द्वारा ऐसे आवेदन पर आक्षेप स्वीकार नहीं किया जा सकता – अत: ऐसा आक्षेप ग्रहण किए जाने योग्य नहीं होगा ।

यह विवादित नहीं है कि विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड) कांगड़ा द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 (जिसे आगे 'डिक्रीधारक' कहा गया है) के हक में तारीख 25 अप्रैल, 2000 को कब्जे के लिए डिक्री पारित की गई थी । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक कोर्ट) कांगड़ा द्वारा अपील में तारीख 8 अगस्त, 2006 के निर्णय द्वारा उक्त निर्णय और डिक्री की पुष्टि की गई थी और इसलिए डिक्री ने अंतिम रूप ले लिया है । डिक्रीधारक ने तारीख 25 अप्रैल, 2000 के निर्णय और डिक्री के

निष्पादन के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 11 और 35 के अधीन निष्पादन आवेदन फाइल किया जिसमें उसने प्रत्यर्थी सं. 2 (जिसे आगे 'निर्णीत-ऋणी' कहा गया है) के विरुद्ध अपमोहाल भवन कांगड़ा, तहसील और जिला कांगड़ा स्थित खाता सं. 372 मिन जुमला, खतौनी सं. 726, खसरा सं. 2502 और 2503 क्षेत्रफल 16.25 बी. एम. भूमि के भौतिक कब्जे के परिदान के लिए अनुरोध किया था । विद्वान् निष्पादन न्यायालय के समक्ष निर्णीत-ऋणी के उपस्थित न होने के कारण उसके विरुद्ध तारीख 11 अक्तूबर, 2007 को एकपक्षीय कार्यवाही की गई थी । इसके पश्चात् विद्वान् निष्पादन न्यायालय ने विवादित भूमि के संबंध में कब्जा-अधिपत्र जारी किया और इस संबंध में रिपोर्ट मांगी । इस प्रकार मांगी गई रिपोर्ट में न्यायालय के बेलिफ और राजस्व कर्मचारियों द्वारा यह रिपोर्ट दी गई थी कि यद्यपि डिक्रीधारक को खसरा सं. 2502 का कब्जा दे दिया गया था तथापि, खसरा सं. 2503 का कब्जा प्रदत्त नहीं किया जा सका क्योंकि आक्षेपकर्ता ने खसरा सं. 2503 में रखे गए आलुओं और प्याज़ को हटाने से इनकार कर दिया था । यह नियमित द्वितीय अपील 2015 की सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 3 में विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश-I, कांगड़ा, धर्मशाला द्वारा तारीख 17 जून, 2017 को पारित उस निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा उक्त न्यायालय ने 2006 के निष्पादन आवेदन सं. 7 में विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड) कांगड़ा द्वारा तारीख 1 जुलाई, 2015 को पारित आदेश की पुष्टि की गई है । उक्त निष्पादन आवेदन में अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए आक्षेपों को खारिज किया गया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 की धारा 47 का स्पष्टीकरण पूर्ण रूप से स्पष्ट करता है कि आंतरिक कार्य उस व्यक्ति द्वारा पूरे किए जा सकते हैं जिसे न्यास द्वारा उपयोगी कार्यों के लिए प्राधिकृत किया गया है । आक्षेपकर्ता के विद्वान् काउंसेल अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री उपदर्शित करने में विफल रहे हैं कि सचिव जिसके द्वारा निष्पादन आवेदन फाइल किया गया था, निष्पादन आवेदन फाइल करने के लिए सक्षम अथवा प्राधिकृत नहीं था अथवा सचिव मामले के तथ्यों से अवगत नहीं था और इसलिए निष्पादन आवेदन फाइल नहीं कर सकता था । भारतीय न्यास अधिनियम की धारा 47 के उपबंधों और

सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 11(2) के उपबंधों के संयुक्त परिशीलन से स्पष्टतया यह उपदर्शित होता है कि न्यायालय का स्वत: ऐसे व्यक्ति के प्राधिकार के प्रति समाधान होना चाहिए जिसने निष्पादन आवेदन फाइल किया है । विधि की उपर्युक्त प्रास्थिति को दृष्टिगत करते हुए यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है कि डिक्रीधारक के सचिव द्वारा पेश किया गया निष्पादन आवेदन उचित और विधिमान्य था और डिक्रीधारक के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह निष्पादन आवेदन पर हस्ताक्षर करे । तद्नुसार विधि के सारभूत प्रश्न का उत्तर आक्षेपकर्ता के विरुद्ध दिया जाता है । (पैरा 17, 18, 19 और 21)

वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् न्यायालय को यह निष्कर्ष निकालने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि वर्तमान अपील फाइल करने का प्रयोजन कार्यवाहियों में विलंब करना है और आक्षेपकर्ता ने अपने फायदे के लिए यह मुकदमेदारी आरंभ की है जिसे स्पष्टतया इस न्यायालय द्वारा अनुज्ञात नहीं किया जा सकता । अत: इस न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह मुकदमेदारों द्वारा मुकदमेदारी जारी रखने के आधार पर प्राप्त किए गए अनुचित फायदे जिसके लिए वह हकदार नहीं है, नकारे । उपर्युक्त विवेचना से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि यह अपील न केवल बलहीन है अपितु इस अपील को फाइल करने के पीछे आशय भी सद्भाविक नहीं है क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि आक्षेपकर्ता का प्रयत्न केवल मुकदमेदारी को लंबा खींचना है जिससे कि उसे भूमि से फायदे प्राप्त हो सके और इस प्रकार यह मुकदमेदारी उसके लिए फायदेमंद साबित हो सके । उपर्युक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय को इस अपील में कोई बल प्रतीत नहीं होता है और तद्नुसार यह अपील 25,000/- रुपए के हर्जाने के साथ खारिज की जाती है । (पैरा 26, 27, 28 और 29)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	(2011) 8 एस. सी. सी. 161 : **इंडियन कौंसिल फार इनवायरो-लीगल-एक्शन** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	27

[2003] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 4482 =
(2003) 8 एस. सी. सी. 648 :
साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य** ; 26

[1998] ए. आई. आर. 1998 कर्नाटक 186 :
वी. के. रामा शेट्टी बनाम **ए. गोपीनाथ** ; 24

[1991] ए. आई. आर. 1991 राजस्थान 136 :
श्री जयप्रकाश बनाम **खिमराज और एक अन्य** ; 23

[1984] ए. आई. आर. 1984 दिल्ली 145 (खंड न्यायपीठ) :
दुली चंद बनाम **महावीर प्रसार त्रिलोक** ; 12

[1976] ए. आई. आर. 1976 बाम्बे 333 :
कोपरगांव बिग बगयातकर विविधा कार्यकारी सहकारी सोसायटी लिमिटेड बनाम **देवराव पवार और एक अन्य** ; 20

[1973] ए. आई. आर. 1973 गुजरात 113 :
आत्मा राम बनाम **गुलाम हुसैन** । 12

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की नियमित द्वितीय अपील सं. 302.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री आर. एल. सूद और अर्जुन लाल

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री जीवेश शर्मा

न्यायमूर्ति तरलोक सिंह चौहान – यह नियमित द्वितीय अपील 2015 की सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 3 में विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश-I, कांगड़ा, धर्मशाला द्वारा तारीख 17 जून, 2017 को पारित उस निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा उक्त न्यायालय ने 2006 के निष्पादन आवेदन सं. 7 में विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड) कांगड़ा द्वारा तारीख 1 जुलाई, 2015 को पारित आदेश

की पुष्टि की गई है । उक्त निष्पादन आवेदन में अपीलार्थी (जिसे आगे 'आक्षेपकर्ता' कहा गया है) द्वारा फाइल किए गए आक्षेपों को खारिज किया गया है ।

2. यह विवादित नहीं है कि विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड) कांगड़ा द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 (जिसे आगे 'डिक्रीधारक' कहा गया है) के हक में तारीख 25 अप्रैल, 2000 को कब्जे के लिए डिक्री पारित की गई थी । विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रेक कोर्ट) कांगड़ा द्वारा अपील में तारीख 8 अगस्त, 2006 के निर्णय द्वारा उक्त निर्णय और डिक्री की पुष्टि की गई थी और इसलिए डिक्री ने अंतिम रूप ले लिया है । डिक्रीधारक ने तारीख 25 अप्रैल, 2000 के निर्णय और डिक्री के निष्पादन के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 11 और 35 के अधीन निष्पादन आवेदन फाइल किया जिसमें उसने प्रत्यर्थी सं. 2 (जिसे आगे 'निर्णीत-ऋणी' कहा गया है) के विरुद्ध अपमोहाल भवन कांगड़ा, तहसील और जिला कांगड़ा स्थित खाता सं. 372 मिन जुमला, खतौनी सं. 726, खसरा सं. 2502 और 2503 क्षेत्रफल 16.25 बी. एम. भूमि के भौतिक कब्जे के परिदान के लिए अनुरोध किया था । विद्वान् निष्पादन न्यायालय के समक्ष निर्णीत-ऋणी के उपस्थित न होने के कारण उसके विरुद्ध तारीख 11 अक्तूबर, 2007 को एकपक्षीय कार्यवाही की गई थी । इसके पश्चात् विद्वान् निष्पादन न्यायालय ने विवादित भूमि के संबंध में कब्जा-अधिपत्र जारी किया और इस संबंध में रिपोर्ट मांगी । इस प्रकार मांगी गई रिपोर्ट में न्यायालय के बेलिफ और राजस्व कर्मचारियों द्वारा यह रिपोर्ट दी गई थी कि यद्यपि डिक्रीधारक को खसरा सं. 2502 का कब्जा दे दिया गया था तथापि, खसरा सं. 2503 का कब्जा प्रदत्त नहीं किया जा सका क्योंकि आक्षेपकर्ता ने खसरा सं. 2503 में रखे गए आलुओं और प्याज़ को हटाने से इनकार कर दिया था ।

3. इसके पश्चात् डिक्रीधारक ने कब्जे के परिदान के लिए बेलिफ को नए सिरे से निदेश करने की ईप्सा करते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित आदेश 21, नियम 97, 99 और 101 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । आक्षेपकर्ता ने यह अभिवचन करते हुए आवेदन का विरोध किया कि आवेदन परिसीमा द्वारा वर्जित है ।

यह कहा गया था कि वह खसरा सं. 2503 में सम्मिलित भूमि पर सन् 1985 से किराए के संदाय के आधार पर चौकस राम के किराएदार के रूप में काबिज है ।

4. विद्वान् निष्पादन न्यायालय ने तारीख 6 जुलाई, 2010 को निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :-

(1) क्या आवेदन परिसीमा द्वारा वर्जित है, जैसा कि अभिकथित किया गया है ? ओ. पी. आर.

(2) क्या प्रत्यर्थी खसरा सं. 2503 पर एक किराएदार के रूप में काबिज है, यदि हां तो इसका प्रभाव ? ओ. पी. आर.

(3) अनुतोष ।

5. जैसा कि ऊपर संप्रेक्षण किया गया है, विद्वान् विचारण न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् तारीख 1 जुलाई, 2015 के आदेश द्वारा डिक्रीधारक द्वारा फाइल आवेदन को मंजूर कर लिया और विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा तारीख 17 जून, 2000 के आदेश द्वारा उक्त आदेश की पुष्टि की गई जिससे व्यथित होकर आक्षेपकर्ता ने वर्तमान अपील फाइल की है ।

6. तारीख 25 अक्तूबर, 2018 को वर्तमान अपील विधि के निम्नलिखित सारभूत प्रश्नों पर ग्रहण की गई थी :-

(1) क्या मूल वाद न्यास के लिखत के अभाव में जो अभिलेख पर न तो पेश किया गया और न ही साबित किया गया, ग्रहण किए जाने योग्य था ?

(2) क्या मूल वाद विधित: पोषणीय और ग्रहण किए जाने योग्य नहीं था क्योंकि वाद में न्यास के साथ सभी न्यासियों को वादियों के रूप में पक्षकार नहीं बनाया गया था ?

(3) क्या निष्पादन आवेदन न्यास के संकल्प के जिसके द्वारा सचिव को विशेष रूप से आवेदन फाइल करने के लिए प्राधिकृत किया जाता, अभाव में ग्रहण किए जाने योग्य नहीं था ?

(4) क्या डिक्रीधारक प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 97, 99 और 101 के अधीन आवेदन परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 129 के उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए परिसीमा द्वारा वर्जित था ?

7. आक्षेपकर्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री आर. एल. सूद ने जिनकी सहायता श्री अर्जुन लाल अधिवक्ता ने की, बलपूर्वक यह दलील दी है कि चूंकि स्वीकृतत: डिक्रीधारक एक न्यासी है इसलिए वाद किसी भी प्रकार से भारतीय न्यास अधिनियम की धारा 47 और 48 के अधीन ग्रहण किए जाने योग्य नहीं था और इसलिए विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा यथा पारित निर्णय और डिक्री जिसकी विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई है, अधिकारिता के बिना पारित की गई थी और अधिकारिता विहीन न्यायालय द्वारा पारित किए जाने के कारण इसका निष्पादन नहीं किया जा सकता । उन्होंने यह भी दलील दी कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 97, 99 और 101 के अधीन आवेदन कालवर्जित होने के कारण खारिज किया जाना चाहिए । इसके प्रतिकूल डिक्रीधारक का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् अधिवक्ता श्री जीवेश शर्मा ने यह दलील दी है कि वाद में पारित निर्णय और डिक्री अंतिम बन गई है और इसलिए आक्षेपकर्ता द्वारा जो कि अन्यथा भी मामले से संबद्ध नहीं है, उठाया गया प्रश्न किसी भी प्रकार से ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है क्योंकि यह डिक्री को पुन: खोलने के बराबर होगा ।

8. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और मामले के अभिलेख का सतर्कतापूर्वक परिशीलन किया ।

विधि का सारभूत प्रश्न सं. 1 और 2

9. चूंकि विधि का सारभूत प्रश्न सं. 1 और 2 आपस में एक-दूसरे से संबद्ध हैं इसलिए इन पर एक साथ विचार करते हुए समान तर्कों द्वारा उत्तर दिया जा रहा है ।

10. विद्वान् विचारण न्यायालय ने वाद के न्यायनिर्णय के लिए निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए थे :-

(1) क्या वादी को सुने जाने का अधिकार नहीं है ? ओ. पी. पी.

(2) यदि विवाद्यक सं. 1 साबित हो जाता है तो क्या वादीगण कब्जे की डिक्री के लिए हकदार हैं ? ओ. पी. पी.

(3) क्या वादीगण व्यादेश के अनुतोष के लिए हकदार हैं ? ओ. पी. पी.

(4) क्या वादीगण नुकसानी के लिए हकदार हैं जैसा कि दावा किया गया है ? ओ. पी. पी.

(5) क्या वाद आवश्यक पक्षकारों को पक्षकार न बनाए जाने के कारण वर्जित है ? ओ. पी. डी.

(6) क्या वाद परिसीमा द्वारा वर्जित है ? ओ. पी. डी.

(7) क्या प्रतिवादी सं. 1 प्रतिकूल कब्जे के आधार पर वाद-भूमि का स्वामी बन गया है ? ओ. पी. डी.-1

(8) क्या प्रतिवादी सं. 2 और 3 प्रतिकूल कब्जे के आधार पर वाद-भूमि के स्वामी बन गए हैं ? ओ. पी. डी.-2 और 3

(8-ए) क्या प्रतिवादी सं. 1 वाद-भूमि में किराएदार है जैसा कि अभिकथित किया गया है, यदि हां तो इसका प्रभाव ? ओ. पी. आर.-1

(9) अनुतोष ।

11. विवाद्यक सं. 1 और 5 पर एक साथ विचार किया जा रहा है क्योंकि निर्णीत-ऋणी का यह विनिर्दिष्ट कथन है कि डिक्रीधारक (वादी सं. 2) न्यास का एक न्यासी नहीं था और इसलिए उसे न्यास की ओर से वाद फाइल करने का कोई अधिकार नहीं था ।

12. विद्वान् विचारण न्यायालय ने गुजरात उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा **आत्मा राम** बनाम **गुलाम हुसैन**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का और दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा **दुली चंद** बनाम

---

[1] ए. आई. आर. 1973 गुजरात 113.

महावीर प्रसाद त्रिलोक[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेने और विस्तृत चर्चा करने के पश्चात् इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :-

> "32. न्यास के संबंध में किसी वैयक्तिक सह-न्यासी की स्थिति इस प्रकार मानी गई है कि वह संयुक्त भूमि के संबंध में एक सह-स्वामी है । गुजरात और दिल्ली उच्च न्यायालय वाले मामलों में मुख्यतया इसी बात पर बल दिया गया है । यदि विधि की इस स्थिति को स्वीकार किया जाता है तब कोई सह-न्यासी किसी अतिचारी के विरुद्ध कब्जे के लिए कोई वाद फाइल करने के लिए समर्थ होना चाहिए बशर्ते कि उसे वाद संपत्ति के न्यास के हक के लिए स्वीकार किया गया हो और उसमें अनन्य हक न माना गया हो । इसे दृष्टिगत करते हुए चूंकि माननीय उच्च न्यायालय हिमाचल प्रदेश द्वारा एक मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि कोई सह-स्वामी अन्य सह-अंशधारकों को पक्षकार बनाए बिना किसी अतिचारी के विरुद्ध संयुक्त भूमि के कब्जे के लिए कोई वाद फाइल कर सकता है बशर्ते कि वह संयुक्त भूमि में अन्य सह-अंशधारकों की हकदारी से इनकार न करता हो ।"

13. इसके पश्चात् निर्णीत-ऋणियों ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित उक्त निर्णय और डिक्री के विरुद्ध एक अपील फाइल की जिसमें विवाद्यक सं. 1 और 5 सहित सभी विवाद्यकों पर दिए गए निष्कर्षों को आक्षेपित किया गया था और विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने निर्णय के पैरा 16 में विस्तृत चर्चा करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि वादी सं. 2 न्यास के सचिव के रूप में वाद फाइल करने के लिए सक्षम था ।

14. स्वीकृततः विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री अंतिम बन गई है और इसलिए प्रश्न सं. 1 और 2 आक्षेपकर्ता के विरुद्ध विनिश्चित किए जाते हैं ।

विधि का सारभूत प्रश्न सं. 3

15. सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 21, नियम 11(2) जो ऐसे

---

[1] ए. आई. आर. 1984 दिल्ली 145 (खंड न्यायपीठ).

व्यक्ति के संबंध में उपबंध करता है जो निष्पादन कार्यवाहियों पर हस्ताक्षर और सत्यापन करेगा, इस प्रकार है :–

"**लिखित आवेदन** – उसके सिवाय जैसा उपनियम (1) द्वारा उपबंधित है, डिक्री के निष्पादन के लिए हर आवेदन लिखत हुआ और आवेदक या किसी अन्य ऐसे व्यक्ति द्वारा, जिसके बारे में न्यायालय को समाधानप्रद रूप में साबित कर दिया गया है कि वह मामले के तथ्यों से परिचित है, हस्ताक्षरित और सत्यापित होगा और उसमें सारणीबद्ध रूप में निम्न विशिष्टियां होंगी, अर्थात् –

(क) वाद का संख्यांक ;

(ख) पक्षकारों के नाम ;

(ग) डिक्री की तारीख ;

(घ) क्या डिक्री के विरुद्ध कोई अपील की गई है ;

(ङ) क्या डिक्री के पश्चात् पक्षकारों के बीच कोई संदाय या विवादग्रस्त बात का कोई अन्य समायोजन हुआ है और (यदि कोई हुआ है तो) कितना या क्या ;

(च) क्या डिक्री के निष्पादन के लिए कोई आवेदन पहले किए गए हैं और (यदि कोई किए गए हैं तो) कौन से हैं और ऐसे आवेदनों की तारीखें और उनके परिणाम ;

(छ) डिक्री मद्धे शोध्य रकम, यदि कोई ब्याज हो तो उसके सहित, या उसके द्वारा अनुदत्त अन्य अनुतोष, किसी प्रति-डिक्री की विशिष्टियों के सहित चाहे वह उस डिक्री की तारीख के पूर्व या पश्चात् पारित की गई हो जिसका निष्पादन चाहा गया है ;

(ज) अधिनिर्णीत खर्चे की (यदि कोई हों) रकम ;

(झ) उस व्यक्ति का नाम जिसके विरुद्ध डिक्री का निष्पादन चाहा गया है ; तथा

(ञ) वह ढंग जिसमें न्यायालय की सहायता अपेक्षित है अर्थात् क्या –

(i) किसी विनिर्दिष्टत: डिक्री सम्पत्ति के परिदान द्वारा ;

(ii) किसी सम्पत्ति की कुर्की द्वारा या कुर्की और विक्रय द्वारा या कुर्की के बिना विक्रय द्वारा ;

(iii) किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी और कारागार में निरोध द्वारा ;

(iv) रिसीवर की नियुक्ति द्वारा ;

(v) अन्यथा, जो अनुदत्त अनुतोष की प्रकृति से अपेक्षित है ।"

16. निस्संदेह भारतीय न्यास अधिनियम की धारा 47 किसी न्यासी को शक्तियों का प्रत्यायोजन करने से प्रतिषिद्ध करती है तथापि, धारा 47 का स्पष्टीकरण इस प्रकार है :-

"**स्पष्टीकरण** - कोई ऐसा कार्य करने के लिए, जो केवल लिपिकवर्गीय प्रकृति का हो और जिसमें स्वतंत्र विवेक का प्रयोग करना अन्तर्वलित न हो, अटर्नी या परोक्षी नियुक्त करना इस धारा के अर्थ के अन्दर प्रत्यायोजन नहीं है ।"

17. उपर्युक्त स्पष्टीकरण पूर्ण रूप से स्पष्ट करता है कि आंतरिक कार्य उस व्यक्ति द्वारा पूरे किए जा सकते हैं जिसे न्यास द्वारा उपयोगी कार्यों के लिए प्राधिकृत किया गया है ।

18. आक्षेपकर्ता के विद्वान् काउंसेल अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री उपदर्शित करने में विफल रहे हैं कि सचिव जिसके द्वारा निष्पादन आवेदन फाइल किया गया था, निष्पादन आवेदन फाइल करने के लिए सक्षम अथवा प्राधिकृत नहीं था अथवा सचिव मामले के तथ्यों से अवगत नहीं था और इसलिए निष्पादन आवेदन फाइल नहीं कर सकता था ।

19. भारतीय न्यास अधिनियम की धारा 47 के उपबंधों और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 11(2) के उपबंधों के संयुक्त परिशीलन से स्पष्टतया यह उपदर्शित होता है कि न्यायालय का

स्वत: ऐसे व्यक्ति के प्राधिकार के प्रति समाधान होना चाहिए जिसने निष्पादन आवेदन फाइल किया है ।

20. **कोपरगांव बिग बगयातकर विविधा कार्यकारी सहकारी सोसायटी लिमिटेड** बनाम **देवराव सखाराम पवार और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया था कि यह आवश्यक नहीं है कि डिक्री धारक किसी निष्पादन आवेदन पर हस्ताक्षर करे, तथापि, न्यायालय का यह समाधान होना चाहिए कि निष्पादन आवेदन पर हस्ताक्षर करने वाला व्यक्ति मामले के तथ्यों से अवगत था ।

21. विधि की उपर्युक्त प्रास्थिति को दृष्टिगत करते हुए यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है कि डिक्री धारक के सचिव द्वारा पेश किया गया निष्पादन आवेदन उचित और विधिमान्य था और डिक्री धारक के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह निष्पादन आवेदन पर हस्ताक्षर करे । तद्नुसार विधि के सारभूत प्रश्न का उत्तर आक्षेपकर्ता के विरुद्ध दिया जाता है ।

विधि का सारभूत प्रश्न सं. 4

22. प्रथमत: किसी अपरिचित/विघ्नकर्ता को निष्पादन न्यायालय के समक्ष निष्पादन कार्यवाहियों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है ।

23. राजस्थान उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा **श्री जयप्रकाश** बनाम **खिमराज और एक अन्य**[2] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 97, 100 और 103 के अधीन परिसीमा का अभिवाक् किसी अपरिचित विघ्नकर्ता द्वारा नहीं उठाया जा सकता क्योंकि ऐसा अभिवाक् केवल निर्णीत-ऋणी को ही उपलब्ध है । स्वीकृतत: हमारे समक्ष का आक्षेपकर्ता एक निर्णीत-ऋणी नहीं है और इसलिए उसे यह अभिवाक् उपलब्ध नहीं है । यहां सुसंगत संप्रेक्षणों को उद्धृत करना उचित होगा जो इस प्रकार हैं :-

---

[1] ए. आई. आर. 1976 बाम्बे 333.

[2] ए. आई. आर. 1991 राजस्थान 136.

"23. आवेदक ने अपने अपील ज्ञापन में यह उल्लेख किया है कि उसने यह कथन करते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 97 के अधीन एक आवेदन भी फाइल किया है कि चूंकि निष्पादन आवेदन डिक्री पारित करने के 2 वर्ष पश्चात् फाइल किया गया था और इसलिए निर्णीत-ऋणी को सूचना जारी की जानी चाहिए । इस अभिवाक् पर दलीलों के दौरान विनिर्दिष्ट रूप से बल नहीं दिया गया था । अत: यह कहा जा सकता है कि विघ्नकर्ता को यह अभिवाक् उपलब्ध नहीं है तथापि, यह अभिवाक् निर्णीत-ऋणी को उपलब्ध है । द्वितीयत: इस मामले में पूर्वतर निष्पादन आवेदन में निर्णीत-ऋणी के विरुद्ध कब्जे के परिदान के लिए अधिपत्र जारी किया गया था और इसलिए मामला पूर्ण रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के नियम 22 के परंतुक के अंतर्गत आता है और इसलिए इस अभिवाक् में कोई बल नहीं है ।"

24. कर्नाटक उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ द्वारा **वी. के. रामा शेट्टी** बनाम **ए. गोपीनाथ**[1] वाले मामले में दिया गया निर्णय भी इसी आशय का है ।

25. मैं क्रमश: राजस्थान और कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त मतों से पूर्णतया सहमत हूं । तद्नुसार विधि के सारभूत प्रश्न का उत्तर आक्षेपकर्ता के विरुद्ध दिया जाता है ।

26. वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् मुझे यह निष्कर्ष निकालने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि वर्तमान अपील फाइल करने का प्रयोजन कार्यवाहियों में विलंब करना है और आक्षेपकर्ता ने अपने फायदे के लिए यह मुकदमेदारी आरंभ की है जिसे स्पष्टतया इस न्यायालय द्वारा अनुज्ञात नहीं किया जा सकता ; और इस प्रकार की परिपाटी को माननीय उच्चतम न्यायालय ने **साउथ ईस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में गंभीर रूप से भर्त्सना करते हुए इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :-

---

[1] ए. आई. आर. 1998 कर्नाटक 186.

[2] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 4482 = (2003) 8 एस. सी. सी. 648.

"28. मुकदमेदारी उपयोगी रूप से की जा सकती है । यद्यपि मुकदमेदारी द्यूत (जुआ) नहीं है तथापि, प्रत्येक मुकदमेदारी में अवसर का एक तत्व होता है । बेईमान मुकदमेदार न्यायालयों में समावेदन करने के लिए उत्साह महसूस कर सकते हैं और अपने हक में प्रथमदृष्ट्या मामला बनाकर न्यायालय को अंतर्वर्ती आदेश पारित करने के लिए राजी कर सकते हैं और जब मामला सुना जाए और गुण-दोष पर अवधारण किया जाए और यदि प्रत्यास्थापन की संकल्पना को अंतरिम आदेशों से विवर्जित किया जाए तब मुकदमेदार अंतरिम आदेश से प्राप्त फायदों को प्राप्त करके फायदा उठा सकता है भले ही वह अंत में अपनी लड़ाई हार जाए । इस बात का समर्थन नहीं किया जा सकता । अत: हमारा यह मत है कि सफल पक्षकार को अंतत: मुकदमेदारी के अंत में धन के निबंधनों में अनुतोष पर पहुंच के लिए हकदार माना जाए तो उसे उस अवधि के लिए एक उपयुक्त दर पर ब्याज अधिनिर्णीत करके प्रतिकारित करने के लिए हकदार माना जाना चाहिए जिसके लिए न्यायालय के अंतरिम आदेश द्वारा धन को प्रदान करने से और प्रवर्तन से रोका गया था ।"

27. अत: इस न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह मुकदमेदारों द्वारा मुकदमेदारी जारी रखने के आधार पर प्राप्त किए गए अनुचित फायदे जिसके लिए वह हकदार नहीं है, नकारे । **इंडियन कौंसिल फार इनवायरो-लीगल-एक्शन** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में यह अवेक्षा की गई है कि पक्षकारों के आचरण को विचार में लिया जाना चाहिए । उक्त मामले में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया था :-

"223. दूसरा पहलू जिस पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है, मुकदमेदारों द्वारा प्राप्त किए गए अनुचित फायदों जिसके लिए वे हकदार नहीं हैं, नकारना है । न्यायालयों को न्यायनिर्णयन करते समय निम्नलिखित सिद्धांतों को ध्यान में रखना चाहिए -

---

[1] (2011) 8 एस. सी. सी. 161.

1. न्यायालय का यह आबद्धकर कर्तव्य है कि वह किसी पक्षकार द्वारा न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब लेकर कोई अनुचित फायदा जिसके लिए वह हकदार नहीं है, प्राप्त करना चाहता है तो वह उसे नकार दे ।

2. जब कोई पक्षकार न्यायालय से व्यादेश पाने के लिए आवेदन करता है और रोकादेश प्राप्त करता है तो यह सदैव ही आवेदन करने वाले पक्षकार के जोखिम और जिम्मेदारी पर होता है । रोक के किसी आदेश के बारे में यह उपधारित नहीं किया जा सकता कि यह मुकदमा करने वाले पक्षकार को अतिरिक्त अधिकार प्रदत्त करता है ।

3. बेईमान मुकदमेदारों को न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब लेकर असम्यक् फायदा लेने से रोका जाना चाहिए ।

4. दोषपूर्ण रीति से काबिज किसी व्यक्ति को उस स्थान से तुरन्त नहीं हटाया जा सकता तथापि, उसे उस परिसर के गलत उपयोग के लिए जुर्माना, शास्ति और हर्जाने का संदाय करने के लिए बाध्य किया जा सकता है । किसी प्रकार की दया न्यायिक प्रणाली की विश्वसनीयता पर गंभीर प्रभाव डालने वाली होगी ।

5. कोई मुकदमेदार विधि के किसी न्यायालय में किसी मामले के मात्र लंबन से फायदा उठा सकता है ।

6. किसी पक्षकार को स्वयं अपनी गलतियों के लिए फायदा प्रदान करना अनुज्ञात नहीं किया जा सकता ।

7. मुकदमेदार को एक फायदेमंद उद्योग के रूप में उपयोग करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता जिससे कि बेईमान मुकदमेदार न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब लेने के लिए प्रोत्साहित हों ।

8. मुकदमेदारी संस्थित करने को किसी पक्षकार को न्यायालय की कार्रवाई को विलंबित करके कोई फायदा प्रदत्त करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता ।"

28. उपर्युक्त विवेचना से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि यह अपील न केवल बलहीन है अपितु इस अपील को फाइल करने के पीछे आशय भी सद्भाविक नहीं है क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि आक्षेपकर्ता का प्रयत्न केवल मुकदमेदारी को लंबा खींचना है जिससे कि उसे भूमि से फायदे प्राप्त हो सकें और इस प्रकार यह मुकदमेदारी उसके लिए फायदेमंद साबित हो सके ।

29. उपर्युक्त चर्चा को दृष्टिगत करते हुए मुझे इस अपील में कोई बल प्रतीत नहीं होता है और तद्नुसार यह अपील 25,000/- रुपए के हर्जाने के साथ खारिज की जाती है । यह हर्जाना डिक्री धारकों को तारीख 21 मई, 2019 से पूर्व संदत्त किया जाएगा । लंबित आवेदनों का भी, यदि कोई हों, निपटान किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

(2019) 2 सि. नि. प. 421 **हिमाचल प्रदेश**

प्रीतम सिंह (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और एक अन्य

बनाम

मित्तो देवी और एक अन्य

(2005 की नियमित द्वितीय अपील सं. 603)

तारीख़ 10 जुलाई, 2019

न्यायमूर्ति तरलोक सिंह चौहान

विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 (1963 का 47) – धारा 38 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 26, नियम 9] – स्थायी व्यादेश के लिए वाद – वादी द्वारा विवादित भूमि पर प्रतिवादियों

के विरुद्ध वृक्ष काटने से रोकने के लिए व्यादेश जारी करने के लिए अनुरोध – प्रतिवादियों द्वारा वृक्ष उनकी भूमि पर खड़े होने का कथन किया जाना – पक्षकारों के बीच भूमि के सीमांकन से संबंधित विवाद – सीमांकन उच्च न्यायालय नियमों और आदेशों के अनुसरण में किया जाना – सीमांकन रिपोर्ट के विरुद्ध किसी भी पक्षकार द्वारा आक्षेप फाइल न किया जाना – चूंकि निचले न्यायालय द्वारा वादी का वाद खारिज किए जाने में कोई अनियमितता नहीं है इसलिए प्रतिवादियों की अपील मंजूर करके वादी का वाद खारिज किया जाना चाहिए ।

इस मामले के न्यायनिर्णयन के लिए संक्षेप में आवश्यक तथ्य इस प्रकार हैं कि वादी (अब मृतक) ने ग्राम भदोरी उप-तहसील हरौली, जिला ऊना स्थित खेवट सं. 5 मिनजुमला, खतौनी सं. 12, खसरा सं. 351, 17 मारलस माप की भूमि पर से प्रतिवादियों को आम की फसल काटने से रोकने और भूमि पर खड़े 'शीशम' के दो वृक्षों की लकड़ी को स्थल से हटाने से रोकने के लिए स्थायी व्यादेश जारी करने हेतु वाद फाइल किया था । वादी ने यह दावा किया कि वह इन वृक्षों का फायदा उठा रही थी तथापि, प्रतिवादियों ने जिनकी भूमि खसरा सं. 352 वादी की भूमि से सटी हुई है और प्रतिवादियों का उपर्युक्त शीशम के वृक्षों सहित वाद भूमि के ऊपर कोई अधिकार, हक या हित नहीं है, बलपूर्वक उन्हें गिराने और आम के बाग को काटने की धमकी दी है । इसलिए यह वाद फाइल किया जा रहा है । यह नियमित द्वितीय अपील विद्वान् अपर न्यायाधीश, फास्ट ट्रेक न्यायालय, जिला ऊना (हिमाचल प्रदेश) द्वारा तारीख 30 अगस्त, 2005 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा वादी-प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई अपील को मंजूर करते हुए विद्वान् उप-न्यायाधीश प्रथम वर्ग, न्यायालय सं. 1, ऊना, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख 16 अप्रैल, 1999 को पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त किया गया है और वादी-प्रत्यर्थी के वाद को विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा डिक्री किए जाने का आदेश किया है । इस निर्णय में आगे पक्षकारों को वादी और प्रतिवादियों के रूप में निर्दिष्ट (संबोधित) किया जाएगा । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय के समक्ष सुनवाई के लिए अपील तारीख 3 अक्तूबर, 2018 को पेश हुई और पक्षकारों को सुनने के पश्चात् और इस सही निष्कर्ष पर पहुंचने के पश्चात् (जिस पर पक्षकारों के बीच विवाद था) कि प्रश्नगत विवाद्यक केवल सीमा विवाद से संबंधित था और इसलिए इसे स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति द्वारा बेहतर तौर पर सुलझाया जा सकता है, सेवानिवृत्त तहसीलदार श्री बिशन सिंह ठाकुर को एक स्थानीय आयुक्त के रूप में नियुक्त किया गया था जिसने तारीख 11 नवंबर, 2008 को 11.00 बजे पूर्वाह्न स्थल का निरीक्षण करने के पश्चात् न केवल खसरा सं. 351 का सीमांकन करने का निदेश दिया अपितु इस भूमि से सटी हुई भूमि विशेषतया खसरा सं. 352 का सीमांकन करने का भी निदेश दिया और इसके पश्चात् इस न्यायालय के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की । यह भी स्पष्ट किया गया था कि आरंभत: स्थानीय आयुक्त की फीस जो कि 25,000/- रुपए नियत की गई थी, पक्षकारों द्वारा समान रूप में (प्रत्येक द्वारा 12,500/- रुपए) संदत्त की जाएगी, तथापि, अंतिम विनिश्चय के समय यह रकम अंतिम रूप से हारने वाले पक्षकार द्वारा संदत्त की जाएगी । उपर्युक्त निदेशों के अनुपालन में स्थानीय आयुक्त ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें उसने यह कहा कि आम का वृक्ष पूर्वतर खसरा सं. 352 जिसका अब खसरा सं. 876/1 है, में खड़ा हुआ है और यह भूमि प्रतिवादियों/अपीलार्थियों के स्वामित्व में है । जहां तक 'शीशम' के वृक्षों का संबंध है, यह राय व्यक्त की गई थी कि चूंकि स्थल पर जड़ का कोई चिह्न नहीं पाया गया है इसलिए इस बारे में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता । किसी भी पक्षकार द्वारा स्थानीय आयुक्त की रिपोर्ट पर आक्षेप फाइल नहीं किए गए । रिपोर्ट के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि सीमांकन पूर्ण रूप से उच्च न्यायालय नियमों और आदेशों के अनुसरण में किया गया है और मामले के वादी/प्रत्यर्थियों द्वारा भी उक्त तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं किया गया है । तद्नुसार स्थानीय आयुक्त की रिपोर्ट को स्वीकार किया गया है । ऊपर निर्दिष्ट विधि के सारभूत प्रश्नों का तद्नुसार स्थानीय आयुक्त की रिपोर्ट स्वीकार करने के रूप में उत्तर दिया जाता है । परिणामत: अपील मंजूर की जाती है और विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित

निष्कर्षों को अपास्त किया जाता है और विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को पुन: स्थापित किया जाता है, तथापि, खर्चों के बारे में यह आदेश किया जाता है कि पक्षकार अपना-अपना खर्चा स्वयं वहन करेंगे । लंबित आवेदन का, यदि कोई हो, भी निपटान किया जाता है । तथापि, निर्णय को अंतिम रूप दिए जाने से पूर्व यह मत व्यक्त किए जाने की आवश्यकता है कि चूंकि रिपोर्ट वादी/प्रत्यर्थियों के विरुद्ध दी गई है इसलिए उन्हें यह निदेश दिया जाता है कि वे 12,500/- रुपए की रकम चार सप्ताह की अवधि के भीतर प्रतिवादी/अपीलार्थियों को संदत्त करें और इससे विफल रहने पर प्रतिवादी/अपीलार्थी इस बात के लिए स्वतंत्र होंगे कि वे निष्पादन आवेदन फाइल करके इसे वादी/प्रत्यर्थियों से वसूल करें और प्रतिवादी/अपीलार्थी इस बात के लिए भी स्वतंत्र होंगे कि वे न केवल प्रश्नगत रकम का दावा कर सकेंगे अपितु निष्पादन कार्यवाहियों पर हुए खर्चों का भी दावा कर सकेंगे । (पैरा 8, 9, 10, 11, 12 और 13)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2005 की नियमित द्वितीय अपील सं. 603.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन नियमित द्वितीय अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री भूपेन्द्र गुप्ता और अजीत पाल सिंह जसवाल

प्रत्यर्थियों की ओर से –

न्यायमूर्ति तरलोक सिंह चौहान – यह नियमित द्वितीय अपील विद्वान् अपर न्यायाधीश, फास्ट ट्रेक न्यायालय, जिला ऊना (हिमाचल प्रदेश) द्वारा तारीख 30 अगस्त, 2005 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा वादी-प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई अपील को मंजूर करते हुए विद्वान् उप-न्यायाधीश प्रथम वर्ग, न्यायालय सं. 1, ऊना, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख 16 अप्रैल, 1999 को पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त किया गया है और वादी-प्रत्यर्थी के वाद को विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा डिक्री किए जाने का

आदेश किया है । इस निर्णय में आगे पक्षकारों को वादी और प्रतिवादियों के रूप में निर्दिष्ट (संबोधित) किया जाएगा ।

2. इस मामले के न्यायनिर्णयन के लिए संक्षेप में आवश्यक तथ्य इस प्रकार हैं कि वादी (अब मृतक) ने ग्राम भदोरी उप-तहसील हरौली, जिला ऊना स्थित खेवट सं. 5 मिनजुमला, खतौनी सं. 12, खसरा सं. 351, 17 मारलस माप की भूमि पर से प्रतिवादियों को आम की फसल काटने से रोकने और भूमि पर खड़े 'शीशम' के दो वृक्षों की लकड़ी को स्थल से हटाने से रोकने के लिए स्थायी व्यादेश जारी करने हेतु वाद फाइल किया था । वादी ने यह दावा किया कि वह इन वृक्षों का फायदा उठा रही थी तथापि, प्रतिवादियों ने जिनकी भूमि खसरा सं. 352 वादी की भूमि से सटी हुई है और प्रतिवादियों का उपर्युक्त शीशम के वृक्षों सहित वाद भूमि के ऊपर कोई अधिकार, हक या हित नहीं है, बलपूर्वक उन्हें गिराने और आम के बाग को काटने की धमकी दी है । इसलिए यह वाद फाइल किया जा रहा है ।

3. प्रतिवादियों ने वाद-भूमि के ऊपर वादी के स्वामित्व और कब्जे को स्वीकार करते हुए वाद का विरोध किया । तथापि, उन्होंने वाद-भूमि के ऊपर वृक्षों के विद्यमान होने से इनकार करते हुए यह अभिवचन और दावा किया कि तथ्यत: विवादित वृक्ष खसरा सं. 352 में सम्मिलित भूमि पर खड़े हैं और क्षेत्र के कानूनगो द्वारा किए गए सीमांकन के अनुसार उक्त भूमि प्रतिवादियों के कब्जे और स्वामित्व में है । अत: इस बात से इनकार किया गया कि प्रतिवादी बलपूर्वक वाद-भूमि से उक्त वृक्षों को काटकर हटा रहे हैं और इसलिए उन्होंने वाद को खारिज करने का अनुरोध किया ।

4. वादी ने उत्तर फाइल करते हुए प्रतिवादियों के अभिवाक् से इनकार किया और इसके पश्चात् विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 26 दिसंबर, 1990 को निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :-

> "1. क्या आम का वृक्ष और दो शीशम के वृक्ष वाद भूमि के ऊपर खड़े हैं जैसा कि अभिकथित किया गया है ? ओ. पी. पी.

2. यदि विवाद्यक सं. 1 साबित हो जाता है, तब क्या वादी स्थायी व्यादेश के अनुतोष के लिए हकदार है जैसा कि अनुरोध किया गया है ? ओ. पी. पी.

3. क्या वादी के पास कोई वाद हेतुक नहीं है ? ओ. पी. डी.

4. अनुतोष ।"

5. विद्वान् विचारण न्यायालय ने साक्ष्य अभिलिखित करने और उसका मूल्यांकन करने के पश्चात् स्थानीय आयुक्त की रिपोर्ट का अवलंब लेते हुए वादी द्वारा फाइल किया गया वाद खारिज कर दिया, तथापि, विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने स्थानीय आयुक्त की रिपोर्ट को त्यक्त करते हुए वादी द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर कर ली ।

6. तारीख 30 नवंबर, 2005 को यह अपील विधि के निम्नलिखित सारभूत प्रश्नों पर ग्रहण की गई थी :-

"1. क्या निचले अपील न्यायालय ने स्थानीय आयुक्त की रिपोर्ट पर वादी द्वारा फाइल किए गए आक्षेपों पर विचारण न्यायालय की रिपोर्ट के लिए आह्वान न करने में गंभीर प्रक्रियात्मक अवैधता कारित की है और क्या उक्त आक्षेपों का अवधारण करते हुए उक्त सीमांकन को अपास्त करने की कार्यवाही करके गंभीर त्रुटि और अनुचितता की है विशेषतया जब वादी स्वयं रिपोर्ट से संतुष्ट थी और उसने उक्त रिपोर्ट को स्वीकार करते हुए अपना अंगुष्ठ चिह्न लगाया था ?

2. क्या निचले अपील न्यायालय ने नए सिरे से स्थानीय आयुक्त नियुक्त न करके अधिकारिता और विधि संबंधी गंभीर त्रुटि कारित की है क्योंकि पक्षकारों के बीच विवाद भूमि की सीमाओं से संबंधित था और उसने उच्च न्यायालय नियम और आदेश (जिल्द-1) के अध्याय 1-एम में अन्तर्विष्ट उपबंधों की उपेक्षा करके केवल सीमांकन का अवधारण किया ? "

विधि का सारभूत प्रश्न सं. 1 और 2

7. चूंकि विधि के दोनों सारभूत प्रश्न सं. 1 और 2 एक दूसरे से संबद्ध हैं इसलिए इन पर एक साथ विचार किया जा रहा है और इनका

एक जैसे सामान्य तर्कों द्वारा निपटान किया जा रहा है ।

8. न्यायालय के समक्ष सुनवाई के लिए अपील तारीख 3 अक्तूबर, 2018 को पेश हुई और पक्षकारों को सुनने के पश्चात् और इस सही निष्कर्ष पर पहुंचने के पश्चात् (जिस पर पक्षकारों के बीच विवाद था) कि प्रश्नगत विवाद्यक केवल सीमा विवाद से संबंधित था और इसलिए इसे स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति द्वारा बेहतर तौर पर सुलझाया जा सकता है, सेवानिवृत्त तहसीलदार श्री बिशन सिंह ठाकुर को एक स्थानीय आयुक्त के रूप में नियुक्त किया गया था जिसने तारीख 11 नवंबर, 2008 को 11.00 बजे पूर्वाह्न स्थल का निरीक्षण करने के पश्चात् न केवल खसरा सं. 351 का सीमांकन करने का निदेश दिया अपितु इस भूमि से सटी हुई भूमि विशेषतया खसरा सं. 352 का सीमांकन करने का भी निदेश दिया और इसके पश्चात् इस न्यायालय के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की । यह भी स्पष्ट किया गया था कि आरंभत: स्थानीय आयुक्त की फीस जो कि 25,000/- रुपए नियत की गई थी, पक्षकारों द्वारा समान रूप में (प्रत्येक द्वारा 12,500/- रुपए) संदत्त की जाएगी, तथापि, अंतिम विनिश्चय के समय यह रकम अंतिम रूप से हारने वाले पक्षकार द्वारा संदत्त की जाएगी ।

9. उपर्युक्त निदेशों के अनुपालन में स्थानीय आयुक्त ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें उसने यह कहा कि आम का वृक्ष पूर्वतर खसरा सं. 352 जिसका अब खसरा सं. 876/1 है, में खड़ा हुआ है और यह भूमि प्रतिवादियों/अपीलार्थियों के स्वामित्व में है । जहां तक 'शीशम' के वृक्षों का संबंध है, यह राय व्यक्त की गई थी कि चूंकि स्थल पर जड़ का कोई चिह्न नहीं पाया गया है इसलिए इस बारे में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता ।

10. किसी भी पक्षकार द्वारा स्थानीय आयुक्त की रिपोर्ट पर आक्षेप फाइल नहीं किए गए । रिपोर्ट के परिशीलन मात्र से यह उपदर्शित होता है कि सीमांकन पूर्ण रूप से उच्च न्यायालय नियमों और आदेशों के अनुसरण में किया गया है और मामले के वादी/प्रत्यर्थियों द्वारा भी उक्त तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं किया गया है । तद्नुसार स्थानीय आयुक्त की रिपोर्ट को स्वीकार किया गया है ।

11. ऊपर निर्दिष्ट विधि के सारभूत प्रश्नों का तद्नुसार स्थानीय आयुक्त की रिपोर्ट स्वीकार करने के रूप में उत्तर दिया जाता है ।

12. परिणामत: अपील मंजूर की जाती है और विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को अपास्त किया जाता है और विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को पुन: स्थापित किया जाता है, तथापि, खर्चों के बारे में यह आदेश किया जाता है कि पक्षकार अपना-अपना खर्चा स्वयं वहन करेंगे । लंबित आवेदन का, यदि कोई हो, भी निपटान किया जाता है ।

13. तथापि, निर्णय को अंतिम रूप दिए जाने से पूर्व यह मत व्यक्त किए जाने की आवश्यकता है कि चूंकि रिपोर्ट वादी/प्रत्यर्थियों के विरुद्ध दी गई है इसलिए उन्हें यह निदेश दिया जाता है कि वे 12,500/- रुपए की रकम चार सप्ताह की अवधि के भीतर प्रतिवादी/अपीलार्थियों को संदत्त करें और इससे विफल रहने पर प्रतिवादी/अपीलार्थी इस बात के लिए स्वतंत्र होंगे कि वे निष्पादन आवेदन फाइल करके इसे वादी/प्रत्यर्थियों से वसूल करें और प्रतिवादी/अपीलार्थी इस बात के लिए भी स्वतंत्र होंगे कि वे न केवल प्रश्नगत रकम का दावा कर सकेंगे अपितु निष्पादन कार्यवाहियों पर हुए खर्चों का भी दावा कर सकेंगे ।

अपील मंजूर की गई ।

महे.

संसद् के अधिनियम

स्त्री अशिष्ट रूपण (प्रतिषेध) अधिनियम, 1986

(1986 का अधिनियम संख्यांक 60)

[23 दिसम्बर, 1986]

विज्ञापनों के माध्यम से या प्रकाशनों, लेखों, रंगचित्रों, आकृतियों में या किसी अन्य रीति से स्त्रियों के अशिष्ट रूपण का प्रतिषेध करने और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के सैंतीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :-

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ - (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम स्त्री अशिष्ट रूपण (प्रतिषेध) अधिनियम, 1986 है ।

(2) इसका विस्तार, जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय, संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख* को प्रवृत्त होगा, जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ।

2 परिभाषाएं - इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से, अन्यथा अपेक्षित न हो, -

(क) "विज्ञापन" के अंतर्गत कोई सूचना, परिपत्र, लेबल, रैपर या अन्य दस्तावेज है और इसके अंतर्गत प्रकाश, ध्वनि, धुआं या गैस के माध्यम से किया गया कोई दृश्य रूपण भी है ;

---

* 2.10.1987 - देखिए अधि. सं. आ. का. नि. 821 (अ), तारीख 29.9.1987, भारत का राजपत्र, असाधारण, भाग 2, धारा 3(i), तारीख 28.9.1987.

(ख) "वितरण" के अंतर्गत नमूने के तौर पर, चाहे मुफ्त या अन्यथा वितरण भी है ;

(ग) "स्त्री अशिष्ट रूपण" से किसी स्त्री की आकृति, उसके रूप या शरीर या उसके किसी अंग का, किसी ऐसी रीति से ऐसे रूप में चित्रण करना अभिप्रेत है जिसका प्रभाव अशिष्ट हो, अथवा जो स्त्रियों के लिए अपमानजनक या निन्दनीय हो, अथवा जिससे, लोक नैतिकता या नैतिक आचार के विकृत, भ्रष्ट या क्षति होने की संभावना है ;

(घ) "लेबल" से कोई लिखित, चिन्हित, स्टाम्पित, मुद्रित या चित्रित विषय-वस्तु अभिप्रेत है जो किसी पैकेज पर चिपकाई गई है या उस पर दिखाई दे रही है ;

(ङ) "पैकेज" के अन्तर्गत कोई बाक्स, कार्टन, टिन या अन्य पात्र भी है ;

(च) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ।

3. स्त्री अशिष्ट रूपण अंतर्विष्ट करने वाले विज्ञापनों का प्रतिषेध – कोई व्यक्ति, कोई ऐसा विज्ञापन जिसमें किसी भी रूप में स्त्रियों का अशिष्ट रूपण अंतर्विष्ट है, प्रकाशित नहीं करेगा या प्रकाशित नहीं करवाएगा अथवा उसके प्रकाशन या प्रदर्शन की व्यवस्था नहीं करेगा या उसमें भाग नहीं लेगा ।

4. स्त्री अशिष्ट रूपण अंतर्विष्ट करने वाली पुस्तकों, पुस्तिकाओं, आदि के प्रकाशन या डाक द्वारा भेजने का प्रतिषेध – कोई व्यक्ति, कोई ऐसी पुस्तक, पुस्तिका, कागज-पत्र, स्लाइड, फिल्म, लेख, रेखाचित्र, रंगचित्र, फोटोचित्र, रूपण या आकृति का, जिसमें किसी रूप में स्त्रियों का अशिष्ट रूपण अंतर्विष्ट है, उत्पादन नहीं करेगा या उत्पादन नहीं करवाएगा, विक्रय नहीं करेगा, उसको भाड़े पर नहीं देगा, वितरित नहीं करेगा, परिचालित नहीं करेगा या डाक द्वारा नहीं भेजेगा :

परन्तु इस धारा की कोई बात, –

(क) किसी ऐसी पुस्तक, पुस्तिका, कागज-पत्र, स्लाइड, फिल्म, लेख, रेखाचित्र, रंगचित्र, फोटोचित्र, रूपण या आकृति को लागू नहीं होगी, –

(i) जिसका प्रकाशन लोक कल्याण के लिए होने के कारण इस आधार पर न्यायोचित साबित हो जाता है कि ऐसी पुस्तक, पुस्तिका, कागज-पत्र, स्लाइड, फिल्म, लेख, रेखाचित्र, रंगचित्र, फोटोचित्र, रूपण या आकृति, विज्ञान, साहित्य, कला अथवा विद्या या सर्वसाधारण संबंधी अन्य उद्देश्यों के हित में हैं ; या

(ii) जो सद्भावपूर्वक धार्मिक प्रयोजनों के लिए रखी या उपयोग में लाई जाती है ;

(ख) किसी ऐसे रूपण को लागू नहीं होगी जो –

(i) प्राचीन संस्मारक तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम, 1958 (1958 का 24) के अर्थ में किसी प्राचीन संस्मारक पर या उसमें ; या

(ii) किसी मंदिर पर या उसमें, या मूर्तियों के प्रवहण के उपयोग में लाए जाने वाले या किसी धार्मिक प्रयोजन के लिए रखे या उपयोग में लाए जाने वाले किसी रथ पर,

तक्षित, उत्कीर्ण, रंगचित्रित या अन्यथा रूपित है ;

(ग) किसी ऐसी फिल्म को लागू नहीं होगी जिसकी बाबत चलचित्र अधिनियम, 1952 (1952 का 37) के भाग 2 के उपबंध लागू होंगे ।

5. प्रवेश करने और तलाशी लेने की शक्तियां – (1) ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए, जो विहित किए जाएं, राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत कोई राजपत्रित अधिकारी, उस क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के भीतर जिसके लिए वह इस प्रकार प्राधिकृत है, –

(क) किसी ऐसे स्थान में, जिसमें उसके पास यह विश्वास

करने का कारण है कि इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किया गया है या किया जा रहा है, ऐसे सहायकों के साथ, यदि कोई हों, जिन्हें वह आवश्यक समझे, सभी उचित समयों पर, प्रवेश कर सकेगा और उसकी तलाशी ले सकेगा ;

(ख) कोई ऐसा विज्ञापन अथवा कोई ऐसी पुस्तक, पुस्तिका, कागज-पत्र, स्लाइड, फिल्म, लेख, रेखाचित्र, रंगचित्र, फोटोचित्र, रूपण या आकृति अभिगृहीत कर सकेगा, जिसके बारे में उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि वह इस अधिनियम के किन्हीं उपबंधों का उल्लंघन करती है ;

(ग) खंड (क) में उल्लिखित किसी स्थान में पाए गए किसी अभिलेख, रजिस्टर, दस्तावेज या अन्य किसी भौतिक पदार्थ की परीक्षा कर सकेगा और, यदि उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि उससे इस अधिनियम के अधीन दंडनीय किसी अपराध के किए जाने का साक्ष्य प्राप्त हो सकता है तो उसे अभिगृहीत कर सकेगा :

परन्तु इस उपधारा के अधीन कोई प्रवेश किसी प्राइवेट निवास-गृह में वारंट के बिना नहीं किया जाएगा :

परन्तु यह और कि इस उपधारा के अधीन अभिग्रहण की शक्ति का प्रयोग, किसी ऐसे दस्तावेज, वस्तु या चीज के लिए, जिसमें ऐसा कोई विज्ञापन अंतर्विष्ट है, उस दस्तावेज, वस्तु या चीज की अंतर्वस्तु सहित, यदि कोई हो, किया जा सकेगा, यदि वह विज्ञापन समुद्भूत होने के कारण या अन्यथा, उस दस्तावेज, वस्तु या चीज से, उसकी समग्रता, उपयोगिता या विक्रय मूल्य पर प्रभाव डाले बिना, अलग नहीं किया जा सकता है ।

(2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के उपबंध इस अधिनियम के अधीन किसी तलाशी या अभिग्रहण को, जहां तक हो सके, वैसे ही लागू होंगे जैसे वे उक्त संहिता की धारा 94 के अधीन जारी किए गए वारंट के प्राधिकार के अधीन ली गई किसी तलाशी या किए गए किसी अभिग्रहण को लागू होते हैं ।

(3) जहां कोई व्यक्ति उपधारा (1) के खंड (ख) या खंड (ग) के अधीन किसी वस्तु का अभिग्रहण करता है वहां वह यथाशक्य शीघ्र, निकटतम मजिस्ट्रेट को उसकी इत्तिला देगा और उस वस्तु की अभिरक्षा के संबंध में उससे आदेश प्राप्त करेगा ।

6. शास्ति – कोई व्यक्ति, जो धारा 3 या धारा 4 के उपबंधों का उल्लंघन करेगा, प्रथम दोषसिद्धि पर दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से, जो दो हजार रुपए तक का हो सकेगा, तथा द्वितीय या पश्चात्वर्ती दोषसिद्धि की दशा में, कारावास से जिसकी अवधि छह मास से कम की नहीं होगी किन्तु जो पांच वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से भी, जो दस हजार रुपए से कम का नहीं होगा किन्तु जो एक लाख रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

7. कंपनियों द्वारा अपराध – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किसी कम्पनी द्वारा किया गया है वहां प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध के किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कंपनी भी ऐसे अपराध के दोषी समझे जाएंगे और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने के भागी होंगे :

परन्तु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को दंड का भागी नहीं बनाएगी यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे अपराध के किए जाने का निवारण करने के लिए सभी सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किसी कंपनी द्वारा किया गया है तथा यह साबित हो जाता है कि वह अपराध कंपनी के किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है वहां ऐसे निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी के विरुद्ध कार्यवाही की जाएगी और तद्नुसार उसे दंडित किया जाएगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, –

(क) "कंपनी" से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत फर्म या व्यष्टियों, का अन्य संगम भी है ; तथा

(ख) किसी फर्म के संबंध में, "निदेशक" से उस फर्म का भागीदार अभिप्रेत है ।

8. अपराधों का संज्ञेय और जमानतीय होना – (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराध जमानतीय होगा ।

(2) इस अधिनियम के अधीन दंडनीय कोई अपराध संज्ञेय होगा ।

9. सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – इस अधिनियम के अधीन सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई भी वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार के किसी अधिकारी के विरुद्ध नहीं होगी ।

10. नियम बनाने की शक्ति – (1) केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् : –

(क) वह रीति जिससे विज्ञापनों या अन्य वस्तुओं का अभिग्रहण किया जाएगा और वह रीति जिससे अभिग्रहण-सूची तैयार की जाएगी और उस व्यक्ति को दी जाएगी जिसकी अभिरक्षा से कोई विज्ञापन या अन्य वस्तु अभिगृहीत की गई है ;

(ख) कोई अन्य विषय जो विहित किया जाना अपेक्षित है या विहित किया जाए ।

(3) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

संसद् के अधिनियम

सती (निवारण) अधिनियम, 1987

(1988 का अधिनियम संख्यांक 3)

[3 जनवरी, 1988]

सती कर्म के और उसके गौरवान्वयन के अधिक प्रभावी निवारण के लिए और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

सती या विधवाओं या स्त्रियों का जीवित दहन या गाड़ा जाना मानव प्रकृति की भावनाओं के विपरीत है और यह भारत के किसी भी धर्म में कहीं भी अनिवार्य कर्तव्य के रूप में आदिष्ट नहीं है ;

और सती कर्म के और उसके गौरवान्वयन के निवारण के लिए अधिक प्रभावी उपाय करना आवश्यक है ;

भारत गणराज्य के अड़तीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :-

भाग 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ - (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम सती (निवारण) अधिनियम, 1987 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह किसी राज्य में उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार राजपत्र में, अधिसूचना द्वारा, नियत करे और भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी ।

2. परिभाषाएं - (1) इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, -

(क) "संहिता" से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) अभिप्रेत है ;

(ख) सती कर्म के संबंध में, "गौरवान्वयन" के अंतर्गत चाहे सती कर्म इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व किया गया हो या उसके पश्चात्, अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित है –

(i) सती कर्म के संबंध में कोई अनुष्ठान करना या कोई जुलूस निकालना ; या

(ii) सती प्रथा का किसी भी रीति से समर्थन करना, न्यायोचित ठहराना या प्रचार करना ; या

(iii) उस स्त्री का, जिसने सती कर्म किया है, गुणगान करने के लिए किसी समारोह का आयोजन करना ; या

(iv) उस स्त्री के, जिसने सती कर्म किया है, सम्मान को कायम रखने या स्मृति को बनाए रखने की दृष्टि से किसी न्यास का सृजन करना या निधि का संग्रह करना, या कोई मंदिर या अन्य संरचना सन्निर्मित करना या उसमें किसी भी रूप में उपासना करना या कोई अनुष्ठान करना ;

(ग) "सती कर्म" से अभिप्रेत है, –

(i) किसी विधवा का उसके मृत पति या किसी अन्य नातेदार के शरीर के साथ या पति या ऐसे नातेदार से संबंधित किसी वस्तु, पदार्थ या चीज के साथ जीवित दहन या गाड़ देने का कार्य ; अथवा

(ii) किसी स्त्री का उसके किसी भी नातेदार के शरीर के साथ जीवित दहन या गाड़ देने का कार्य, भले ही यह दावा किया जाए कि ऐसा दहन या गाड़ देना विधवा या स्त्री की ओर से स्वेच्छा से किया गया है या अन्यथा ;

(घ) "विशेष न्यायालय" से धारा 9 के अधीन गठित विशेष न्यायालय अभिप्रेत है ;

(ङ) "मंदिर" के अंतर्गत ऐसे व्यक्ति की, जिसके संबंध में सती कर्म किया गया है, स्मृति बनाए रखने के लिए सन्निर्मित या बनाया गया और किसी भी रूप में उपासना करने के लिए या ऐसे सती कर्म के संबंध में कोई अन्य अनुष्ठान करने के लिए उपयोग किया जाने वाला या उपयोग किए जाने के लिए आशयित कोई भवन या कोई संरचना है चाहे उस पर छत है या नहीं ।

(2) उन शब्दों और पदों के जो इस अधिनियम में प्रयुक्त हैं किन्तु परिभाषित नहीं हैं और भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) या संहिता में परिभाषित हैं, वही अर्थ होंगे जो भारतीय दंड संहिता या संहिता में हैं ।

भाग 2

सती कर्म से संबंधित अपराधों के लिए दंड

3. सती कर्म करने का प्रयत्न – भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) में किसी बात के होते हुए भी, जो कोई सती कर्म करने का प्रयत्न करेगा और सती कर्म करने का कोई कार्य करेगा, वह कारावास से जिसकी अवधि छह मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, या दोनों से, दंडनीय होगा :

परंतु इस धारा के अधीन किसी अपराध का विचारण करने वाला विशेष न्यायालय किसी व्यक्ति को सिद्धदोष ठहराने से पूर्व, अपराध किए जाने की परिस्थितियों, किए गए कार्य, अपराध से आरोपित व्यक्ति की कार्य करने के समय मानसिक दशा और अन्य सभी सुसंगत बातों पर विचार करेगा ।

4. सती कर्म करने का दुष्प्रेरण – (1) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) में किसी बात के होते हुए भी, यदि कोई स्त्री सती कर्म करती है, तो जो कोई सती कर्म करने का, प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: दुष्प्रेरण करेगा, वह मृत्यु से, या आजीवन कारावास से, दंडनीय होगा और जुर्माने का भी दायी होगा ।

(2) यदि कोई स्त्री सती कर्म करने का प्रयत्न करती है, तो जो कोई ऐसे प्रयत्न का प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: दुष्प्रेरण करेगा, वह

आजीवन कारावास से दंडनीय होगा और जुर्माने का भी दायी होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए निम्नलिखित कार्यों में से किसी कार्य या तत्समान कार्यों को भी दुष्प्रेरण समझा जाएगा, अर्थात् : –

(क) किसी विधवा या स्त्री को उसके मृत पति या किसी अन्य नातेदार के शरीर के साथ या पति या ऐसे नातेदार से संबंधित किसी वस्तु, पदार्थ या चीज के साथ, स्वयं का जीवित दहन कर लेने या गड़ जाने के लिए उत्प्रेरित करना, चाहे वह ठीक मानसिक दशा में है या मत्तता या संज्ञा शून्यता की हालत में है या ऐसा कोई अन्य कारण है जो उसकी स्वतंत्र इच्छा के प्रयोग में बाधा डाल रहा है ;

(ख) किसी विधवा या स्त्री को यह विश्वास दिलाना कि सती कर्म के परिणामस्वरूप उसे या उसके मृत पति या नातेदार को कुछ आध्यात्मिक लाभ होगा या कुटुम्ब का पूर्ण कल्याण होगा ;

(ग) किसी विधवा या स्त्री को, सती कर्म करने के उसके संकल्प में दृढ़ बने रहने के लिए प्रोत्साहित करना और इस प्रकार उसे सती कर्म करने के लिए उकसाना ;

(घ) सती कर्म से संबंधित किसी जुलूस में भाग लेना या विधवा या स्त्री को उसके मृत पति या नातेदार के शरीर के साथ शवदाह या शमशान भूमि तक ले जाकर सती कर्म करने के उसके विनिश्चय में सहायता करना ;

(ङ) उस स्थान पर, जहां सती कर्म किया जा रहा है, सती कर्म करने के कार्य में या उससे संबंधित किसी अनुष्ठान में सक्रिय सहभागी के रूप में उपस्थित रहना ;

(च) विधवा या स्त्री को, जीवित दहन किए या गाड़े जाने से अपने को बचाने से रोकना या उसमें बाधा पहुंचाना ;

(छ) सती कर्म के निवारण के लिए पुलिस के कोई कदम

उठाने के उसके कर्तव्यों के निर्वहन में बाधा पहुंचाना या हस्तक्षेप करना ।

5. सती कर्म के गौरवान्वयन के लिए दंड – जो कोई सती कर्म के गौरवान्वयन के लिए कोई कार्य करेगा, वह कारावास से जिसकी अवधि एक वर्ष से कम की नहीं होगी किन्तु जो सात वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से, जो पांच हजार रुपए से कम का नहीं होगा किन्तु जो तीस हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

भाग 3

सती कर्म से संबंधित अपराधों के निवारण के लिए कलक्टर या जिला मजिस्ट्रेट की शक्तियां

6. कुछ कार्यों का प्रतिषेध करने की शक्ति – (1) जहां कलक्टर या जिला मजिस्ट्रेट की यह राय है कि सती कर्म किया जा रहा है या उसके किए जाने का दुष्प्रेरण किया जा रहा है या सती कर्म किया जाने वाला है वहां वह, आदेश द्वारा, ऐसे क्षेत्र या क्षेत्रों में, जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं, किसी व्यक्ति द्वारा सती कर्म से संबंधित किसी कार्य के किए जाने का प्रतिषेध कर सकेगा ।

(2) कलक्टर या जिला मजिस्ट्रेट, आदेश द्वारा, उस आदेश में विनिर्दिष्ट किसी क्षेत्र या क्षेत्रों में किसी व्यक्ति द्वारा सती कर्म के किसी रीति से गौरवान्वयन को प्रतिषिद्ध कर सकेगा ।

(3) जो कोई उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन किए गए किसी आदेश का उल्लंघन करेगा, वह, यदि ऐसा उल्लंघन इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध के अधीन दंडनीय नहीं है तो कारावास से जिसकी अवधि एक वर्ष से कम की नहीं होगी, किन्तु जो सात वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से, जो पांच हजार रुपए से कम का नहीं होगा किन्तु जो तीस हजार रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

7. कुछ मंदिरों या अन्य संरचनाओं को हटाने की शक्ति – (1) यदि राज्य सरकार का यह समाधान हो जाता है कि किसी मंदिर या

अन्य संरचना में, जो बीस वर्ष से अन्यून समय से विद्यमान है, किसी ऐसे व्यक्ति के, जिसके संबंध में सती कर्म किया गया है, सम्मान को कायम रखने या उसकी स्मृति को बनाए रखने की दृष्टि से किसी रूप में उपासना या कोई अनुष्ठान किया जाता है तो वह, आदेश द्वारा, ऐसे मंदिर या संरचना को हटाने का निदेश दे सकेगी ।

(2) यदि कलक्टर या जिला मजिस्ट्रेट का यह समाधान हो जाता है कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट से भिन्न किसी मंदिर या अन्य संरचना में, ऐसे व्यक्ति के, जिसके संबंध में सती कर्म किया गया है, सम्मान को कायम रखने या उसकी स्मृति को बनाए रखने की दृष्टि से किसी रूप में उपासना या कोई अन्य अनुष्ठान किया जाता है तो वह, आदेश द्वारा, ऐसे मंदिर या संरचना को हटाने का निदेश दे सकेगा ।

(3) जहां उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन किसी आदेश का अनुपालन नहीं किया जाता है, वहां, यथास्थिति, राज्य सरकार या कलक्टर या जिला मजिस्ट्रेट, मंदिर या अन्य संरचना को किसी ऐसे पुलिस अधिकारी के, जो उपनिरीक्षक की पंक्ति से नीचे का न हो, माध्यम से, व्यतिक्रमी के खर्चे पर, हटवाएगा ।

8. कुछ संपत्तियां अभिग्रहण करने की शक्ति – (1) जहां कलक्टर या जिला मजिस्ट्रेट को यह विश्वास करने का कारण है कि सती कर्म के गौरवान्वयन के प्रयोजन के लिए कोई निधि या संपत्ति संगृहीत या अर्जित की गई है या जो ऐसी परिस्थितियों में पाई जाती है जो इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के किए जाने का संदेह उत्पन्न करती है, वहां वह ऐसी निधि या संपत्ति का अभिग्रहण कर सकेगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन कार्य करने वाला प्रत्येक कलक्टर या जिला मजिस्ट्रेट, किसी ऐसे अपराध का, जिसके संबंध में ऐसी निधि या संपत्ति संगृहीत या अर्जित की गई थी, विचारण करने के लिए गठित विशेष न्यायालय को, यदि कोई है, ऐसे अभिग्रहण की रिपोर्ट देगा और उसके व्ययन के बारे में ऐसे विशेष न्यायालय के आदेश की प्रतीक्षा करेगा ।

भाग 4

विशेष न्यायालय

9. इस अधिनियम के अधीन अपराधों का विचारण – (1) संहिता में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन सभी अपराध, इस धारा के अधीन गठित किसी विशेष न्यायालय द्वारा ही विचारणीय होंगे ।

(2) राज्य सरकार इस अधिनियम के अधीन अपराधों के विचारण के लिए राजपत्र में, अधिसूचना द्वारा, एक या अधिक विशेष न्यायालय गठित करेगी और प्रत्येक विशेष न्यायालय संपूर्ण राज्य या उसके ऐसे भाग की बाबत, अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किया जाए, अधिकारिता का प्रयोग करेगा ।

(3) विशेष न्यायालय में ऐसा न्यायाधीश पीठासीन होगा जो राज्य सरकार द्वारा, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से, नियुक्त किया जाएगा ।

(4) कोई व्यक्ति किसी विशेष न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए तब तक अर्हित नहीं होगा जब तक वह ऐसी नियुक्ति में ठीक पूर्व, किसी राज्य में सेशन न्यायाधीश या अपर सेशन न्यायाधीश नहीं हो ।

10. विशेष लोक अभियोजक – (1) प्रत्येक विशेष न्यायालय के लिए राज्य सरकार किसी व्यक्ति को विशेष लोक अभियोजक के रूप में नियुक्त करेगी ।

(2) कोई व्यक्ति इस धारा के अधीन विशेष लोक अभियोजक के रूप में नियुक्त किए जाने का तभी पात्र होगा जब उसने सात वर्ष से अन्यून अवधि तक अधिवक्ता के रूप में व्यवसाय किया है, या राज्य के अधीन सात वर्ष से अन्यून अवधि तक ऐसा कोई पद धारण किया है, जिसमें विधि के विशेष ज्ञान की अपेक्षा है ।

(3) इस धारा के अधीन विशेष लोक अभियोजक के रूप में नियुक्त

प्रत्येक व्यक्ति को संहिता की धारा 2 के खंड (प) के अर्थ में लोक अभियोजक समझा जाएगा और तद्नुसार संहिता के उपबंध प्रभावी होंगे ।

11. विशेष न्यायालयों की प्रक्रिया और शक्तियां – (1) विशेष न्यायालय ऐसे तथ्यों के परिवाद के प्राप्त होने पर जिनसे ऐसा अपराध गठित होता है या ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर, अभियुक्त को विचारण के लिए अपने को सुपुर्द किए जाने के बिना, किसी अपराध का संज्ञान कर सकेगा ।

(2) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, विशेष न्यायालय को किसी अपराध के विचारण के प्रयोजन के लिए, सेशन न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी और ऐसे अपराधों का विचारण यावत्शक्य, सेशन न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए संहिता में विहित प्रक्रिया के अनुसार वैसे ही करेगा मानो वह सेशन न्यायालय हो ।

12. विशेष न्यायालय की अन्य अपराधों की बाबत शक्ति – (1) इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का विचारण करते समय, विशेष न्यायालय ऐसे किसी अन्य अपराध का भी विचारण कर सकेगा जिसके लिए अभियुक्त पर उसी विचारण में संहिता के अधीन आरोप लगाया जाए यदि अपराध ऐसे अन्य अपराध से संबंधित है ।

(2) यदि इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के किसी विचारण के दौरान यह पाया जाता है कि अभियुक्त व्यक्ति ने इस अधिनियम के अधीन या किसी अन्य विधि के अधीन कोई अन्य अपराध किया है, तो विशेष न्यायालय, ऐसे व्यक्ति को ऐसे अन्य अपराध के लिए भी सिद्धदोष ठहरा सकेगा और उसके दंड के लिए इस अधिनियम द्वारा या ऐसी अन्य विधि द्वारा प्राधिकृत कोई दंडादेश पारित कर सकेगा ।

(3) प्रत्येक जांच या विचारण में, कार्यवाही यथासंभव शीघ्रता के साथ की जाएगी और विशिष्टतया वहां जहां साक्षियों की परीक्षा प्रारंभ हो गई है, वह दिन प्रतिदिन तब तक चलती रहेगी जब तक हाजिर सभी साक्षियों की परीक्षा नहीं हो जाती है, और यदि कोई विशेष न्यायालय

उसका पश्चात्वर्ती तारीख से आगे के लिए स्थगित किया जाना आवश्यक समझता है तो वह ऐसा करने के लिए अपने कारण लेखबद्ध करेगा ।

13. निधि या संपत्ति का समपहरण – जहां किसी व्यक्ति को इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया गया है, वहां ऐसे अपराध का विचारण करने वाला विशेष न्यायालय, यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझे तो, यह घोषणा कर सकेगा कि धारा 8 के अधीन अभिगृहीत कोई निधि या संपत्ति राज्य को समपहृत हो जाएगी ।

14. अपील – (1) संहिता में किसी बात के होते हुए भी, विशेष न्यायालय के किसी निर्णय, दंडादेश या आदेश से, जो अंतर्वर्ती आदेश नहीं है, तथ्य और विधि, दोनों पर उच्च न्यायालय को साधिकार अपील होगी ।

(2) इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील उस निर्णय, दंडादेश या आदेश की तारीख से, जिससे अपील की गई है, तीस दिन की अवधि के भीतर की जाएगी :

परंतु उच्च न्यायालय, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी के पास तीस दिन की अवधि के भीतर अपील न करने के लिए पर्याप्त कारण था तो, तीस दिन की उक्त अवधि के अवसान के पश्चात् कोई अपील ग्रहण कर सकेगा ।

भाग 5

प्रकीर्ण

15. इस अधिनियम के अधीन की गई कार्रवाई का संरक्षण – इस अधिनियम या इस अधिनियम के अधीन बनाए गए किसी नियम या आदेश के अनुसरण में, सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही राज्य सरकार या राज्य सरकार के किसी अधिकारी या प्राधिकारी के विरुद्ध नहीं होगी ।

16. सबूत का भार – जहां किसी व्यक्ति को धारा 4 के अधीन किसी अपराध के लिए अभियोजित किया गया है वहां यह साबित करने

का भार कि उसने उक्त धारा के अधीन अपराध नहीं किया है, उस पर होगा ।

17. कुछ व्यक्तियों की इस अधिनियम के अधीन अपराध किए जाने के बारे में रिपोर्ट करने की बाध्यता – (1) सरकार के सभी अधिकारियों से, इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम या आदेश के उपबंधों के निष्पादन में पुलिस की सहायता करने के लिए अपेक्षा की जाती है और उन्हें सशक्त किया जाता है ।

(2) सभी ग्राम अधिकारी और ऐसे अन्य अधिकारी, जिन्हें कलक्टर या जिला मजिस्ट्रेट किसी क्षेत्र के संबंध में विनिर्दिष्ट करे और ऐसे क्षेत्र के निवासी, यदि उन्हें यह विश्वास करने का कारण है, या यह ज्ञान है कि उस क्षेत्र में सती कर्म किया जाने वाला है या सती कर्म किया गया है तो, ऐसे तथ्य की रिपोर्ट निकटतम पुलिस थाने में तुरंत करेंगे ।

(3) जो कोई उपधारा (1) या उपधारा (2) के उपबंधों का उल्लंघन करेगा, वह दोनों में से किसी भी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, दंडनीय होगा और जुर्माने का भी दायी होगा ।

18. धारा 4 के अधीन किसी अपराध के सिद्धदोष व्यक्ति का कुछ संपत्ति विरासत में पाने से निरर्हित होना – सती कर्म करने के संबंध में धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन किसी अपराध को सिद्धदोष व्यक्ति, ऐसे व्यक्ति की, जिसके संबंध में सती कर्म किया गया है, संपत्ति या ऐसे अन्य व्यक्ति की संपत्ति, जिसका वह ऐसे व्यक्ति की, जिसके संबंध में सती कर्म किया गया है, मृत्यु पर विरासत में पाने का हकदार होता, विरासत में पाने से निरर्हित हो जाएगा ।

*__19. 1951 के अधिनियम 43 का संशोधन__ – लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में, –

---

* 3.5.2001 की धारा 2 और पहली अनुसूची द्वारा धारा 19 निरसित ।

(क) धारा 8 की उपधारा (2) में, परन्तुक के पश्चात् निम्नलिखित परंतुक अंत: स्थापित किया जाएगा, अर्थात् :

"परन्तु यह और कि सती (निवारण) अधिनियम, 1987 के किन्हीं उपबंधों के उल्लंघन के लिए किसी विशेष न्यायालय द्वारा सिद्धदोष ठहराया गया व्यक्ति ऐसी दोषसिद्धि की तारीख से निरर्हित होगा और अपने छोड़े जाने से पांच वर्ष की अतिरिक्त अवधि के लिए निरर्हित बना रहेगा ।"

(ख) धारा 123 में, खंड (3क) के पश्चात् निम्नलिखित खंड अंत: स्थापित किया जाएगा, अर्थात् :-

'(3ख) किसी अभ्यर्थी या उसके अभिकर्ता या अभ्यर्थी या उसके निर्वाचन अभिकर्ता की सहमति से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा, उस अभ्यर्थी के निर्वाचन की संभाव्यताओं को अग्रसर करने के लिए या किसी अभ्यर्थी के निर्वाचन पर प्रतिकूल प्रभाव डालने के लिए सती की प्रथा या उसके कर्म का प्रचार या उसका गौरवान्वयन ।

स्पष्टीकरण - इस खंड के प्रयोजनों के लिए "सती कर्म" और सती कर्म के संबंध में "गौरवान्वयन" के क्रमश: वही अर्थ होंगे जो सती (निवारण) अधिनियम, 1987 में हैं ।'।

20. अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव होना - इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए किसी नियम या किए गए आदेश के उपबंध, इस अधिनियम से भिन्न किसी अधिनियमिति में या इस अधिनियम से भिन्न किसी अधिनियमिति के आधार पर प्रभावी किसी लिखत में, उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे ।

21. नियम बनाने की शक्ति - (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियम बना सकेगी ।

(2) इस धारा के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष जब वह सत्र में हो,

कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किंतु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

22. विद्यमान विधियों का निरसन - (1) किसी राज्य में इस अधिनियम के प्रारंभ होने के ठीक पूर्व उस राज्य में प्रवृत्त सभी विधियां, जो सती कर्म के निवारण या गौरवान्वयन का उपबंध करती हैं, ऐसे प्रारंभ पर, निरसित हो जाएंगी ।

(2) ऐसे निरसन के होते हुए भी, उपधारा (1) के अधीन निरसित किसी विधि के अधीन की गई कोई बात या कार्रवाई इस अधिनियम के तत्स्थानी उपबंधों के अधीन की गई समझी जाएगी और, विशिष्टतया इस प्रकार निरसित किसी विधि के उपबंधों के अधीन किसी विशेष न्यायालय द्वारा संज्ञान किए गए और उस राज्य में इस अधिनियम के प्रारंभ के ठीक पूर्व उसके समक्ष लंबित किसी मामले पर कार्रवाई ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् उस विशेष न्यायालय द्वारा वैसे ही जारी रहेगी, मानो वह विशेष न्यायालय इस अधिनियम की धारा 9 के अधीन गठित किया गया हो ।

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय – डा. एस. सी. खरे – 1996	273	115	29.00
2.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) – विधि साहित्य प्रकाशन – 2000	209	225	57.00
3.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	290.00
4.	मानव अधिकार – डा. शिवदत्त शर्मा – 2006	340	120	60.00
5.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. विधि शब्दावली	सातवां संस्करण, 2015	कीमत रु. 375/-
2. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2019	कीमत रु. 1,900/-
3. भारत का संविधान (सिंधी भाषा में)	1998	कीमत रु. 45/-
4. बहुभाषी संविधान शब्दावली	1986	कीमत रु. 12/-

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

Website : www.lawmin.nic.in
Email : am.vsp-molj@gov.in

Cover-iv

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के चयनित क्रमशः सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in